ओं

श्री पञ्चस्तवी

मूल तथा हिन्दी भाषा भावार्थ

अनुवादक

राजानक लम्बोदर (*तारवाला*)

मार्गशीर्ष 1997 विक्रमी : नवम्बर 1940 ईसवी

पुनःमुद्रण : वैशाख 2054 विक्रमी अप्रेल 1997 ईसवी

संपादक एवम् संशोधक :

स्वर्गीय प्रोफेसर पृथ्वीनाथ पुष्प

एवं

डॉ० राजबहादुर पाण्डेय

एम०ए०(हिन्दी), एम०ए०(संस्कृत), पीएच० डी०

प्रकाशक :

मोतीलाल रैना

बी-4, पम्पोश एन्क्लेव, नयी दिल्ली-110048 मूल्यः15/-रु०

सृष्टो संस्थापनाय त्वपहरणविधौ
मोहनेनु ग्रहीषि–
सर्वेषाम गर्लानां निज महिम वशादं
क्रमेण वैयाल–
नित्यं क्रीडा प्रसक्ता रचयति सकलं
स्वात्म शक्तया प्रपंचं
सानः स्त्रानाय भूयाद्र भिमत फलदा
भद्रकाली चकाली–

ओं

श्री पञ्चस्तवी

मूल तथा हिन्दी भाषा भावार्थ

अनुवादक

राजानक लम्बोदर (*तारवाला*)

मार्गशीर्ष 1997 विक्रमी : नवम्बर 1940 ईसवी

पुनःमुद्रण : वैशाख 2054 विक्रमी अप्रेल 1997 ईसवी

संपादक एवम् संशोधक :

स्वर्गीय प्रोफेसर पृथ्वीनाथ पुष्प

एवं

डॉ० राजबहादुर पाण्डेय

एम०ए०(हिन्दी), एम०ए०(संस्कृत), पीएच० डी०

प्रकाशक :

मोतीलाल रैना

बी-4, पम्पोश एन्क्लेव, नयी दिल्ली-110048 मूल्यः15/-रु०

प्रस्तावना

श्री पंचस्तवी, माँ भगवती की पाँच स्तुतियों का एक विख्यात संग्रह है, जिसमें माँ की महिमा को चित्रित किया गया है,। यह ग्रंथ ज़्यादातर कश्मीर घाटी में ही पाया जाता है, पर घाटी के बाहर भी इसकी पहचान है, विशेषतः दक्षिण में। इसके रचयिता धर्माचार्य निर्धारित किये गये हैं। परन्तु उनके जन्म-कर्म के बारे में अभी तक कोई निश्चय नहीं हो पाया है। बहुत से जाने-माने विद्वानों ने इसका अनुवाद पहले से ही किया था, पर मेरे पिताजी को ऐसा आभास हुआ कि आम जनता को इसका सारांश समझ में नहीं आया है। अतः उन्होंने इसका अनुवाद साहित्यिक हिन्दी में किया तथा 1940 ई० में इसे छपवाकर और प्रकाशित कर के, उन्होंने इसे उन लोगों में बाँटा, जो इसमें रुचि रखते थे और इसके इच्छुक थे।

मेरे पिताजी श्री लम्बोदर राजानक, पं० केशव राम राज़दान के छोटे भाई थे। पं० केशव राम राज़दान एक साधु-प्रकृति के सज्जन थे। वे संस्कृत के विद्वान् थे।

अँग्रेज़ सरकार तार-यंत्र योजना को सारे भारतवर्ष में फैलाना चाहती थी। एक तार-यंत्र कार्यालय गिलगित में खोलने का भी प्लान था। परन्तु इस कार्य का बीड़ा उठाने के लिए कोई भी तैयार न था। ऐसे समय में पं० केशव राम राज़दान ने तुरन्त ही सरकार के सामने इस कार्य-भार को सँभालने का प्रस्ताव रखा। इस प्रकार वह 'तारवाला' के नाम से पहचाने जाने लगे और इसीलिए सारा परिवार भी इसी नाम से जाना जाता है।

स्वर्गीय श्री लम्बोदर राजानक संस्कृत पढ़ने के लिए अपने भाई के पद-चिह्नों पर चले, जबकि वह व्यावसायिक रूप से यंत्र-शास्त्र से सम्बन्ध रखते

थे। खुशकिस्मती से उन्हें फतहकदल में स्थित 'शेष आश्रम' के प्रसिद्ध महात्मा महताब काक के साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। स्वाभाविक रूप से राजानक लम्बोदर एक मानव-प्रेमी व्यक्ति थे। उन्होंने अपने कई बन्धु-बान्धवों की अनेक प्रकार से सहायता की।

अपने पिताजी के स्मरण में मैंने इस पुस्तक को पुनः छपवाने की आवश्यकता अनुभव की, ताकि उनकी इच्छानुसार यह सब लोगों तक पहुँचे और वे भी इससे लाभ उठा सकें।

पुनः प्रकाशन से पूर्व 'पंचस्तवी' को स्वर्गीय पृथ्वीनाथ पुष्प ने संशोधित किया था; किन्तु अब आनन्दविहार, दिल्ली-92, से प्रकाशित त्रैमासिक 'आनन्दबोध' पत्र के प्रधान सम्पादक डा० राजबहादुर पाण्डेय एम० ए० (हिन्दी) एम० ए० (संस्कृत) पी एच० डी० ने सह-सम्पादक पं० त्रिलोकीनाथ वांचू की प्रेरणा से पुनः पूर्णरूप से परिशुद्ध किया है। उक्त सभी महानुभावों के प्रति मैं हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

मेरे पिताजी की यही इच्छा थी कि पुस्तक मूलपाठ और उसके हिन्दी-अनुवाद की दृष्टि से पूर्ण शुद्ध रूप में प्रकाशित हो। मुझे प्रसन्नता है कि उनकी इच्छा अब पूर्ण हो सकेगी। संशोधन में पूर्ण सावधानी रखते हुए भी यदि कोई त्रुटि रह गयी हो तो विज्ञजन उसे स्वयं शुद्ध करलें।

अन्ततः मैं अपने गुरुजी व देवी भद्रकाली के उपासक स्वर्गीय श्री केशव जी महाराज से प्रार्थना करता हूँ कि वे इस पुस्तक का पठन करने वाले भक्तों को माँ भद्रकाली का आशीर्वाद प्रदान करें।

मोती लाल रैना *(तारवाला)*
बी-4, पम्पोश एन्क्लेव
नयी दिल्ली-110048

ओं

उपोद्घात

बड़े हर्ष का विषय है कि प्रांचीन दुर्बोध शक्ति प्रभाववर्धिनी पंचस्तवी जो एक लघु पुस्तक है यह सब महानुभावों को विदित है। इसका अर्थ यद्यपि दुर्ज्ञेय है तो भी भक्त जन बड़े प्रेम से प्रतिदिन जगत्माता के समक्ष अथवा अपने-अपने घरों में इसका पाठ करके परमानन्द प्राप्त करते हैं। परन्तु खेद के साथ यह कहना पड़ता है कि इसके रचनाकाल से आज तक बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वानों का अस्तित्व होते हुए भी किसी मान्यवर विद्वान् ने इसके अर्थ प्रकटाने में लेखनी उठाने का साहस न किया। यद्यपि बड़े प्रौढ़ विद्वानों के सत्ताकाल में मेरा यह प्रयास उपहासास्पद ही होगा, तथापि इस अल्पज्ञ ने यथामति जगदम्बा की कृपा से प्रेरित होकर हिन्दी भाषा में अर्थप्रकाशन को लेखनी उठाई है। यद्यपि मादृश अल्प-बुद्धिमानों का टूटा-टाटा अर्थ-प्रकाश सचमुच पंडितों के सामने सूर्य को दीपक दिखाना होगा तथापि विज्ञ जन अपनी बुद्धिमत्ता की ओर ध्यान करते हुए भगवती जगत्माता के प्रेम में मग्न होकर मेरे क्षुद्र सेवारूप परिश्रम को सफल कर देने में ज़रा भी संकोच न करेंगे। सम्भव है कि दुर्बोध अर्थ के प्रकाशन में कहीं-कहीं त्रुटियाँ अवश्य रही होंगी; तो भी अपनी करुणानुसार पाठक स्वयं शुद्ध कर देवें। कितना ही अच्छा रहेगा, यदि वे महानुभाव मुझे भी सूचित करें। मेरी अत्यन्त इच्छा है कि मैं सच्चे और शुद्ध

पदार्थ से लाभ उठाऊँ और दूसरे संस्करण में ठीक-ठीक अर्थ प्रकटीभाव होने से सब भक्त जन शुद्ध अर्थ समझने का लाभ उठाएँगे।

यथा :–

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः।।

राजानक लम्बोदर (*तारवाला*)
निवासी श्रीनगर (काश्मीर)
संवत्सर 1997 मगर महीना

लेज़रटाइप सैटिंग : अल्फा कम्प्यूटर सिस्टम्स एण्ड सर्विसिज़
दिल्ली-110006. फोन : 2915845

मुद्रक : जगत पिंटिंग वर्क्स, 2667, रोशन पुरा
नयी सड़क, दिल्ली-110006

वितरक :
आनन्दबोध प्रकाशन-न्यास (धर्मार्थ)
श्रीराम मन्दिर, आनन्द विहार,
नयी दिल्ली - 110092

ऊँ

पञ्चस्तवी

लघुस्तवः प्रथमः

ऊँनमस्त्रिपुरसुन्दर्यै

ऐन्द्रस्येव शरासनस्य दधती मध्येललाटं प्रभां।
शौक्लीं कान्तिमनुष्णगोरिव शिरस्यातन्वती सर्वतः।
एषाऽसौ त्रिपुरा हृदि द्युतिरिवोष्णांशोः सदाहः स्थिता।
छिन्द्यान्नः सहसा पदैस्त्रिभिरघं ज्योतिर्मयी वाङ्मयी ॥1॥

इन्द्रधनुष जैसी दीप्ति जिसके ललाट पर विराजती है। चन्द्रमा के सब ओर फैली श्वेतवर्णी चन्द्रिका जैसी शीतल चाँदनी जिसके शिर के सब ओर बिखर रही है। सूर्य की दीप्ति जैसी दीप्ति जिसके हृदय में सदा विद्यमान रहती है। ऐसी वह स्वयं प्रकाशित एवं वाणी को प्रकाशित करने वाली माता त्रिपुरसुन्दरी हमारे हृदयगत वासनात्मक पापों का अपने तीन बीजमन्त्राक्षरों के द्वारा शीघ्र ही विनाश करें ॥1॥

श्लोक के प्रथम तीन चरणों के आरम्भ में माता त्रिपुरसुन्दरी के तीनों बीजमन्त्राक्षर (ऐं, क्लीं, सौः) विद्यमान हैं।

या मात्रा त्रपुसीलतातनुलसत्तन्तूत्थितिस्पर्धिनी।
वाग्बीजे प्रथमस्थिता तव सदा तां मन्महे ते वयम्।
शक्तिः कुण्डलिनीति विश्वजननव्यापारबद्धोद्यमा।
ज्ञात्वेत्थंः न पुनः स्पृशन्ति जननीगर्भेऽर्भकत्वं नराः ॥2॥

जो शक्ति प्रथम बीजमन्त्राक्षर (ऐं) में सदा स्थित है, उसको हम साधक जगत् की उत्पत्ति के कार्य में लगी हुई वह कुण्डलिनी-शक्ति मानते हैं, जिसका रंग राँगा जैसा चमकदार है और जिसका स्वरूप सूक्ष्म-तन्तु जैसी बेल जैसा है। बीज मन्त्राक्षर 'ऐं' की शक्ति ही कुण्डलिनी शक्ति है, ऐसा ज्ञानोदय होने पर व्यक्ति पुनः माता के गर्भ में नहीं जाते। अर्थात् वे जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाते हैं ॥2॥

दृष्ट्वा संभ्रमकारि वस्तु सहसा ऐ ऐ इति व्याहृतं।
येनाऽकूतवशादपीह वरदे विन्दुं विनाप्यक्षरम्।
तस्यापि ध्रुवमेव देवि तरसा जाते तवानुग्रहे।
वाचः सूक्तिसुधारसद्रवमुचो निर्यान्ति वक्त्राम्बुजात् ॥3॥

हे वरदे ! जो पुरुष किसी भयानक-वस्तु को अचानक देखकर भयभीत होकर तुम्हारे प्रथम बीजमन्त्राक्षर 'ऐं' के स्थान पर 'ऐ-ऐ' ऐसा ही उच्चारण करने लगता है, तो हे देवि! उस पर भी शीघ्र ही तुम्हारे अनुग्रह के निश्चय ही उदय हो जाने से उसके मुखकमल से अमृतरस प्रवाहित करने वाली सूक्तिधारा निकलने लगती है। अर्थात् उसकी भी सुप्तवाणी सुमुखरित हो उठती है ॥3॥

यत् नित्ये! तव कामराजमपरं मन्त्राक्षरं निष्कलं।
तत्सारस्वतमित्यवैति विरलः कश्चिद्बुधश्चेद्भुवि।
आख्यानं प्रतिपर्व सत्यतपसो यत्कीर्तयन्तो द्विजाः।
प्रारम्भे प्रणवास्पदप्रणयितां नीत्वोच्चरन्ति स्फुटम् ॥4॥

हे नित्ये! (सदा स्वरूप में स्थित रहने वाली) कामराजबीज नामक जो तुम्हारा दूसरा बीजमन्त्राक्षर (क्लीं) है, वह 'क, ल' रहित अर्थात् "ई" मात्र 'सारस्वत बीज' है, पृथ्वी पर यह कोई बिरला ही जानता है। सत्यतपस् नामक ऋषि का आख्यान करते हुए ब्रह्मवित् ब्राह्मण इसीलिए प्रत्येक पर्व पर मन्त्र-कीर्तन करते हुए मन्त्रारम्भ में 'ओं' के स्थान पर उसी सारस्वत बीज 'ई' का ही उच्चारण करते हैं ॥4॥

यत्सद्यो वचसां प्रवृत्तिकरणे दृष्टप्रभावं बुधैः।
तार्तीयीकमहं नमामि मनसा त्वद्बीजमिन्दुप्रभम्।
अस्त्वौर्वोऽपि सरस्वतीमनुगतो जाड्याम्बुविच्छित्तये।
गोशब्दो गिरी वर्तते स नियतं योगं विना सिद्धिदः ॥5॥

चन्द्रमा के समान प्रकाशित तुम्हारे जिस तीसरे बीजमन्त्राक्षर 'सौः' के प्रभाव को बुद्धिमानों ने वाणी को शीघ्र जाग्रत करने वाला बताया है, उस को मैं मन से प्रणाम करता हूँ।

'गो' शब्द का अर्थ है—सरस्वती। यह शब्द इतना प्रभावशाली है कि इसके 'ओ' मात्र के जप से योग अथवा ध्यान के बिना भी सरस्वती सिद्ध हो जाती है।

इसी प्रकार तुम्हारे तीसरे बीजमन्त्राक्षर 'सौः' में इतनी शक्ति है कि 'सौः' के 'औः' मात्र का जप करने से बुद्धि की जड़ता उसी प्रकार सूख जाती है, जैसे बड़वाग्नि से जल सूख जाता है ॥5॥

एकैकं तव देवि बीजमनघं सव्यञ्जनाव्यञ्जनं।
कूटस्थं यदि वा पृथक्क्रमगतं यद्वा स्थितं व्युत्क्रमात्।
यं यं काममपेक्ष्य येन विधिना केनापि वा चिन्तितं।
जप्तं वा सफलीकरोति सहसा तं तं समस्तं नृणाम् ॥6॥

हे देवि! तुम्हारे इन पवित्र तीन बीजमन्त्राक्षरों (ऐं, क्लीं, सौः) में से एक-एक करके, व्यञ्जन-सहित अथवा व्यञ्जन-रहित (स्वरमात्र), तीनों बीजाक्षरों को एक साथ मिलाकर अथवा पृथक्-पृथक्, क्रमपूर्वक (ऐं, क्लीं, सौः) अथवा विपरीत क्रम से (सौः, क्लीं, ऐं) ; यदि किसी व्यक्ति ने भी किसी विधि से भी किसी भी कामना से चिन्तन अथवा जप किया है, तो तुम उसके उस अनुष्ठान को तुरन्त सफल कर देती हो ॥6॥

वामे पुस्तकधारिणीमभयदां साक्षस्त्रजं दक्षिणे।
भक्तेभ्यो वरदानपेशलकरां कर्पूरकुन्दोज्ज्वलाम्।
उज्जृम्भाम्बुजपत्रकान्तनयनस्निग्धप्रभालोकिनी।
ये त्वामम्ब! न शीलयन्ति मनसा तेषां कवित्वं कुतः ॥7॥

बायें हाथ में पुस्तक धारण करने वाली, अभय देने वाली, अक्षमाला दाहिने हाथ में धारण करने वाली, भक्तों के मनोरथ पूर्ण करने वाली, कर्पूर और कुन्द पुष्पों के समान उज्ज्वल एवं विकसित कमलपत्र जैसे मनोहर नेत्रों वाली तथा स्नेह के प्रकाशयुक्त दृष्टि वाली हे माता! जो पुरुष तुम्हारा इस रूप में मन से ध्यान नहीं करते हैं, उनको कवित्व शक्ति कहाँ से प्राप्त हो सकती है?॥7॥

ये त्वां पाण्डुर-पुण्डरीक-पटल-स्पष्टाभिरामप्रभां।
सिञ्चन्तीममृतद्रवैरिव शिरो ध्यायन्ति मूर्ध्नि स्थिताम्।
अश्रान्तं विकटस्फुटाक्षरपदा निर्याति वक्त्राम्बुजात्।
तेषां भारति! भारती सुरसरित्कल्लोललोलोर्मिवत् ॥8॥

श्वेत कमलों के समूह की दीप्ति के समान मनोहर दीप्ति वाली और शिर पर अमृत की वर्षा निरन्तर करती हुई, हे सरस्वती! जो व्यक्ति इस रूप में मतिष्क में स्थित हुई आपका ध्यान करते हैं उनके मुखकमल से सुन्दर और स्पष्ट अक्षरों एवं पदों वाली वाणी गङ्गा की चंञ्चल लहरों के समान अनायास निरन्तर निकलने लगती है ॥8॥

ये सिन्दूरपरागपुञ्जपिहितां त्वत्तेजसा द्यामिमाम्।
उर्वीं चापि विलीनयावकरसप्रस्तारमग्नामिव।
पश्यन्ति क्षणमप्यनन्यमनसस्तेषामनङ्गज्वरः।
क्लान्तास्त्रस्त-कुरङ्गशावकदृशो वश्याः भवन्ति स्फुटम् ॥9॥

तुम्हारे तेज के कारण ही आकाश सिन्दूर की धूलि से व्याप्त जैसा है और पृथ्वी भी तुम्हारे तेज के कारण ही लाख के रस से युक्त जैसी है जो साधक एकाग्रचित्त से क्षण भर भी ऐसा अनुभव करते हैं अर्थात् जो तुम्हें सर्व-व्यापक देखते हैं ; भीत हरिणशावकं के समान नेत्रों वाली कामज्वर से पीड़ित स्त्रियाँ अथवा अन्तर्वृत्तियाँ अवश्य उनके वश में हो जाती हैं ॥॥9॥

जातोऽप्यल्पपरिच्छदे क्षितिभुजां सामान्यमात्रे कुले।
निःशेषावनिचक्रवर्तिपदवीं लब्ध्वा प्रतापोन्नतः।
यद्विद्याधरवृन्दवन्दितपदः श्रीवत्सराजोऽभवत्।
देवि! त्वच्चरणाम्बुज-प्रणतिजः सोऽयं प्रसादोदयः ॥12॥

हे देवि! साधारण राजाओं में उत्पन्न हुआ श्री वत्सराज नामक एक राजा छोटे परिवार और सामान्य कुल में उत्पन्न होने पर भी तुम्हारे चरणकमलों में अर्पित प्रणामों से उपार्जित महान् प्रताप से ही सारी पृथिवी के चक्रवर्ती की पदवी को प्राप्त हुआ। विद्याधर नाम के देवता भी उसके चरणों की स्तुति करने लगे। वह सब तुम्हारे अनुग्रह का ही प्रभाव है ॥12॥

चण्डि! त्वच्चरणाम्बुजार्चनविधौ बिल्वीदलोल्लुण्ठन।
त्रुट्यत्कण्टक कोटिभिः परिचयं येषां न जग्मुः कराः।
ते दण्डांकुश-चक्र-चाप-कुलिश-श्रीवत्स-मत्स्यांकितैः।
जायन्ते पृथिवीभुजः कथमिवाम्भोजप्रभैः पाणिभिः ॥13॥

हे चंड-मुंड को मथने वाली चण्डि! तुम्हारे चरणकमलों के पूजा-विधान में जिन पुरुषों के हाथ बिल्वपत्रों के चुनने के लिए उनके करोड़ों काँटों के अग्र भाग को न छुएँ तो वे दण्ड, अंकुश, चक्र, चाप, धनुष, श्रीवत्स और मछली के चिह्न-सहित कमल के समान हाथ वाले राजा कैसे हो सकते हैं ॥13॥

विप्राः क्षोणिभुजो विशस्तदितरे क्षीराज्यमध्वासवैः।
त्वां देवि! त्रिपुरे! परापरमयीं सन्तर्प्य पूजाविधौ।
यां यां प्रार्थयते मनः स्थिरधियां तेषां त एव ध्रुवं।
तां तां सिद्धिमवाप्नुवन्ति तरसा विघ्नैरविघ्नीकृताः ॥14॥

हे देवि त्रिपुरे! जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र दूध, घी, मधु और सुरा से परापर स्वरूप आपको पूजा-विधान से तृप्त करते हैं ; उन्हीं निश्चल बुद्धि साधकों के मन जिस-जिस सिद्धि की याचना करते हैं, वे उस-उस सिद्धि को निश्चय ही शीघ्र निर्विघ्न होकर पाते हैं ॥14॥

शब्दानां जननी त्वमत्र भुवने वाग्वादिनीत्युच्यसे।
त्वत्तः केशववासवप्रभृतयोप्याविर्भवन्ति स्फुटम्।
लीयन्ते खलु यत्र कल्पविरमे ब्रह्मादयस्तेप्य मी।
सा त्वं काचिदचिन्त्यरूपमहिमा शक्तिः परा गीयसे ॥15॥

लोक में वर्णमाला के अकार से क्षकार तक जितने भी अक्षर हैं अथवा उन अक्षरों से बनने वाले जितने भी शब्द हैं, तुम उनकी जननी हो। इसीलिए तुम वाग्वादिनी कहलाती हो। निश्चय ही तुमसे ही विष्णु और इन्द्र आदि देवता उत्पन्न हुए हैं तथा वे सभी कल्पान्त में तुम में ही लय हो जाते हैं। ऐसी तुम कोई अचिन्तनीय महिमा, स्वरूप और शक्ति वाली पराशक्ति कही गयी हो ॥5॥

देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां शक्तित्रयं त्रिस्वराः।
त्रैलोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्करमथो त्रिब्रह्म वर्णास्त्रयः।
यत्किञ्चिज्जगति त्रिधा नियमितं वस्तु त्रिवर्गात्मकं।
तत्सर्वं त्रिपुरेति नाम भगवत्यन्वेति ते तत्त्वतः ॥16॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये तीन देव; दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य, आहवनीय ये तीन अग्नियाँ; इच्छा, ज्ञान, क्रिया, ये तीन शक्तियाँ; उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, ये तीन स्वर; भूः, भुवः; स्वः ये तीन लोक; जालन्धर, कामरूप, उड़ीसा, ये तीन पीठ; नाभि, हृदय, ललाट, ये तीन पुष्कर; अथवा इडा, पिंगला, सुषम्ना ये तीन पुष्कर तत्, सत्, ब्रह्म ये तीन ब्रह्म; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीन वर्ण तथा जगत् में जो कुछ त्रिवर्गात्मक है, वह सब यर्थात में, त्रिपुरा भगवती के ही नाम हैं। ॥16॥

लक्ष्मीं राजकुले जयां रणभुवि क्षेमंकरीमध्वनि।
क्रव्याद्-द्विप-सर्प-भाजि शबरीं कान्तारदुर्गे गिरौ।
भूत-प्रेत-पिशाच-जम्बुकभये स्मृत्वा महाभैरवीं।
व्यामोहे त्रिपुरां तरन्ति विपदस्तारां च तोयप्लवे ॥17॥

लक्ष्मी का स्मरण राजदरबार में, जया का स्मरण रणभूमि में, क्षेमंकरी का मार्ग में, शबरी का स्मरण विषम, दुर्गम पर्वतों और राक्षस, हाथी, सर्प के भय के समय; महाभैरवी का स्मरण भूत, प्रेत, पिशाच और जंगली जानवरों के भय के समय; त्रिपुरा का स्मरण चित्त भ्रम के समय; तारा का स्मरण पानी को पार करने में करना चाहिए। इस प्रकार सम्पूर्ण विपदाएँ दूर हो जाती हैं ॥17॥

माया कुण्डलिनी क्रिया मधुमती काली कला मालिनी।
मातङ्गी विजया जया भगवती देवी शिवा शाम्भवी।
शक्तिः शङ्करवल्लभा त्रिनयना वाग्वादिनी भैरवी।
ह्रींकारी त्रिपुरा परापरमयी माता कुमारीत्यसि ॥18॥

सर्व-स्वतन्त्र-शक्ति, मूलाधार-शक्ति, क्रिया-शक्ति, ज्ञान -शक्ति, सृष्टि-स्थिति, संहार-शक्ति, अमृतकला-शक्ति, वर्णमाला-शक्ति, परा-शक्ति, जया-विजया रूपिणी, सर्वऐश्वर्यमती, प्रकाशरूपिणी, कल्याणी रूपिणी, आनन्दरूपिणी, स्वयं शक्ति, महादेव की प्रिया, सोम-सूर्य-अग्नि रूपिणी। वैखरी स्वरूपा, भयंकर-स्वरूपिणी, मायाबीजशक्ति, इडा-पिंगला-सुषुम्ना शक्ति, स्थूल-सूक्ष्म स्वरूपिणी, जगत्-जननी, जगत् विलासिनी (हे माता!) ये सब तुम ही हो। (यह श्लोक भगवती के महामन्त्र का गर्भ है। इसी से ह्रीं, श्रीं, क्लीं, सौः, ऐं, पाँच बीजमन्त्राक्षर निकलते हैं ॥18॥

आईपल्लवितैः परस्परयुतैर्द्वित्रिक्रमाद्यक्षरैः।
काद्यैः क्षान्तगतैः स्वरादिभिरथ क्षान्तैश्च तैः सस्वरैः।
नामानि त्रिपुरे! भवन्ति खलु यान्यत्यन्तगुह्यानि ते।
तेभ्यो भैरवपत्नि! विंशतिसहस्रेभ्यः परेभ्यो नमः ॥19॥

हे त्रिपुरे! आकार और ईकार के संपुट को कवर्ण से लेकर क्षवर्ण तक मिलावें। फिर स्वरसहित कवर्ण से लेकर क्षवर्ण तक मिलावें। इस तरह तुम्हारे जो नाम हैं वे हे भैरवपत्नि! बीस हज़ार से अधिक हैं जो कि अत्यन्त गुह्य हैं। उन सभी को निश्चय करके मैं नमस्कार करता हूँ ॥19॥

बोद्धव्या निपुणं बुधैः स्तुतिरियं कृत्वा मनस्तद्गतं।
भारत्या त्रिपुरेत्यनन्यमनसा यत्राद्यवृत्ते स्फुटम्।
एकद्वि त्रिपद क्रमेण कथितस्त्वत्पाद संख्याक्षरैः।
मन्त्रोद्धार-विधिर्विशेषसहितः सत्संप्रदायान्वितः ॥20॥

जिस स्तोत्र के पहले श्लोक में तुम्हारे पादों की संख्या, पहले, दूसरे और तीसरे पद वाले अक्षरों के क्रम और मन्त्रों के उद्धार की विधि असामान्य गुणसहित और गुरु सम्प्रदायसहित कही गयी है, विद्वानों को त्रिपुरा नाम सरस्वती के इस स्तोत्र पर एकाग्रबुद्धि से मन को तन्मय करके विमर्श करना चाहिए ॥20॥

सावद्यं निरवद्यमस्तु यदि वा किंवानया चिन्तया।
नूनं स्तोत्रमिदं पठिष्यति नरो यस्यास्ति भक्तिस्त्वयि।
संचिन्त्यापि लघुत्वमात्मनि दृढं संजायमानं हठात्।
त्वद्भक्त्या मुखरीकृतेन रचितं यस्मान्मयापि ध्रुवम् ॥21॥

दोषरहित हो वा दोषसहित, इस चिन्ता को छोड़कर जिस पुरुष को तुम्हारी भक्ति हो, वह इस स्तोत्र को पढ़े। मैंने निश्चय करके बलात् तुम्हारी भक्ति के उत्साह में अपने लाघव का विचार छोड़कर इस स्तोत्र की रचना की है ॥21॥

इति श्रीपञ्चस्तव्यां लघुस्तवः ॥



चर्चास्तवो द्वितीयः

ओंनमस्त्रिपुरसुन्दयै

उों आनन्दसुन्दरपुरन्दरमुक्तमाल्यं।
मौलौ हठेन निहितं महिषासुरस्य।
पादाम्बुजं भवतु मे विजयाय मञ्जु।
मञ्जीरशिञ्जितमनोहरमम्बिकायाः ॥1॥

जगत्माता के जिन चरणकमलों पर देवराज ने उत्तम माला अर्पण की है, जिन चरणकमलों ने महिषासुर के शिर को बलपूर्वक कुचला है, जो चरणकमल पाजेबों के मनोहर शब्दों से शोभित हैं, जगत्माता के वे आनन्ददायक मनोहर पाद कमल मेरे जयका हेतु होवें ॥1॥

सौन्दर्यविभ्रमभुवो भुवनाधिपत्य।
सम्पत्तिकल्पतरवस्त्रिपुरे जयन्ति।
एते कवित्वकुमुदप्रकरावबोध।
पूर्णेन्दवस्त्वयि जगज्जननि प्रणामाः ॥2॥

हे त्रिपुरे! आपको अर्पित किये गये प्रणाम तीनों लोकों के स्वामित्व के ऐश्वर्य को देने वाले कल्पतरु हैं और कविता रूपी कुमुद-पुष्पों को खिलाने वाले पूर्णचन्द्र रूप हैं। हे जगत्माता ! आपको अर्पित किये गये उन प्रणामों की जय हो ॥2॥

देवि! स्तुतिव्यतिकरे कृतबुद्धयस्ते।
वाचस्पतिप्रभृतयोपि जडीभवन्ति।
तस्मान्निसर्गजडिमा कतमोहमत्र।
स्तोत्रं तव त्रिपुरतापनपत्नि कर्तुम् ॥3॥

हे देवि! तुम्हारी स्तुति करने के कार्य में अपनी बुद्धि का प्रयोग करके देव गुरु वृहस्पति आदि भी जडबुद्धि बनते हैं; तब हे महादेव की पत्नी! मैं स्वभाव से ही मूर्ख जडबुद्धि कैसे तुम्हारी स्तुति करने में समर्थ हो सकता हूँ॥3॥

मातस्तथापि भवतीं भवतीव्रताप।
विच्छित्तये स्तुति-महार्णवकर्णधारः।
स्तोतुं भवानि! स भवच्चरणारविन्द।
भक्तिग्रहः किमपि मां मुखरीकरोति ॥4॥

हे माता! तो भी भव-तीव्र-ताप को शान्त करने के लिए आपके स्तुति-रूपी महासमुद्र का मैं कर्णधार बन रहा हूँ। इसमें हे भवानी! आपके चरणारविन्दों की आलौकिक भक्ति का आग्रह ही स्तुति करने के लिए मुझे कुछ मुखरित कर रहा है ॥4॥

सूते जगन्ति भवती भवती विभर्ति।
जागर्ति तत्क्षयकृते भवती भवानि।
मोहं भिनत्ति भवती भवती रुणद्धि।
लीलायितं जयति चित्रमिदं भवत्याः ॥5॥

हे भवानि! ब्रह्माणीरूप से तुम संसार की उत्पत्ति करती हो, वैष्णवी रूप से संसार का पालन करती हो, रुद्राणी रूप से संसार का संहार करती हो, तुम मोह (अज्ञान) को दूर करती हो और तुम्हीं संसार में फँसाती हो। जो तुम आश्चर्यजनक लीला दिखाती हो, उसकी नित्य विजय होवे ॥5 ॥

यस्मिन्मनागपि नवाम्बुजपत्रगौरि।
गौरि! प्रसाद-मधुरां दृशमादधासि।
तस्मिन्निरन्तरमनङ्गशरप्रकीर्ण।
सीमन्तिनी-नयन-संततयः पतन्ति ॥6॥

कमल की नवीन पंखड़ी के समान श्वेतवर्ण वाली हे गौरी! तुम जिस पुरुष विशेष पर थोड़ी सी भी मधुर कृपादृष्टि डालती हो, उस पुरुष विशेष पर कामदेव के वाणों से छिदी हुई देवस्त्रियों की आँखें नित्य पड़ती हैं। (अर्थात् योगिनियां उसके वश में हो जाती हैं।) ॥6॥

पृथ्वीभुजोऽप्युदयनप्रसवस्य तस्य।
विद्याधर-प्रणति-चुम्बितपादपीठः।
यच्चक्रवर्तिपदवीप्रणयः स एष।
त्वत्पाद-पङ्कजरज-कणजः प्रसादः ॥7॥

राजा उदयन का पुत्र प्रवरसेन-जिसके पादपीठ का चुम्बन विद्याधर देवों के प्रणामों के द्वारा किया जाता था; वह चक्रवर्ती राज्य का स्वामी हुआ, हे जगदम्बा! वह आपके चरणकमलों के धूलिकणों के प्रसाद से ही हुआ था॥7॥

त्वत्पादपङ्कजरजः प्रणिपातपूतैः।
पुण्यैरनल्पमतिभिः कृतिभिः कवीन्द्रैः।
क्षीरक्षपाकरदुकूलहिमावदाता।
कैरप्यवापि भुवनत्रितयेऽपि कीर्तिः ॥8॥

हे भगवति! तुम्हारे चरणकमलों की धूलि को प्रणाम करने से पवित्र बने हुए कई भाग्यशील पुण्यवान् सूक्ष्म बुद्धि कवियों ने दूध, चन्द्रमा और शुभ्र रेशमी वस्त्र के समान निर्मल कीर्ति तीनों भुवनों में पायी ॥8॥

कल्पद्रुमप्रसवकल्पितचित्रपूजाम् ।
उद्दीपितप्रियतमामदरक्तगीतिम् ।
नित्यं भवानि! भवतीमुपवीणयन्ति ।
विद्याधराः कनकशैलगुहागृहेषु ॥9॥

सुमेरु पर्वत के गुहारूप घरों में स्थित विद्याधर अपनी प्रियतमाओं के द्वारा गाये गये उद्दीप्त आनन्द और अनुराग में डूबे गीतों को वीणा पर बजाते हुए कल्पवृक्ष के पुष्पों से नित्य हे भवानी! तुम्हारी पूजा करते हैं ॥9॥

लक्ष्मीवशीकरणकर्मणि कामिनीनाम् ।
आकर्षणव्यतिकरेषु च सिद्धमन्त्रः ।
नीरन्ध्रमोहतिमिर-च्छिदुर-प्रदीपो ।
देवि! त्वंदघ्रिजनिता जयति प्रसादः ॥10॥

हे देवि! तुम्हारे चरणकमलों से उत्पन्न हुआ जो प्रसाद है, वह महालक्ष्मी को वश में करने के कार्य में और कामनादायक शक्तियों के आकर्षण में सिद्ध-मन्त्र है तथा दृढ़ मोह रूपी घने अंधकार को काटने वाला दीपक है। ऐसे तुम्हारे प्रसाद की जय हो ॥10॥

देवि! त्वदंघ्रिनखरत्नभुवो मयूखाः।
प्रत्यग्रमौक्तिक-रुचो मुदमुद्वहन्ति।
सेवानति व्यतिकरे सुरसुन्दरीणां।
सीमन्तसीम्नि् कुसुमस्तबकायितं यैः ॥11॥

हे देवि! तुम्हारे चरणों के नखरत्नों की किरणें नवीन मोतियों की सी दीप्ति धारण करती हैं। उन नखरत्नों की मौक्तिक दीप्ति जब तुम्हारी सेवा-प्रणति में झुके हुए शिरों वाली देव-सुन्दरियों की सीमन्त (माँग) पर पड़ती है, तो उन की माँगें श्वेत-पुष्प-गुच्छों से सजी हुई प्रतीत होती हैं ॥11॥

मूर्ध्नि स्फुरत्तुहिन-दीधिति-दीप्तिदीप्तं।
मध्ये ललाटममरायुध-रश्मिचित्रम्।
हृच्चक्र-चुम्बि-हुतभुक्कणिकानुरूपं।
ज्योतिर्यदेतदिदमम्ब तव स्वरूपम् ॥12॥

तुम्हारा मस्तक चन्द्रमा की चाँदनी जैसे प्रकाश से प्रकाशित है। तुम्हारा मस्तक इन्द्रधनुष जैसे नाना वर्णों से रंजित है। हृदय तो अग्नि की चिनगारियों जैसी ज्योतिवाला है। हे माता! ऐसा तेरा स्वरूप है ॥12॥

रूपं तव स्फुरितचन्द्रमरीचिगौरम् ।
आलोकते मनसि वागधिदैवतं यः ।
निस्सीमसूक्तिरचनामृतनिर्झरस्य ।
तस्य प्रसादमधुराः प्रसरन्तिः वाचः ॥13॥

विकसित चन्द्रमा की किरणों के सदृश श्वेत वर्ण वाली वाणी की देवता सरस्वती देवी, आपके स्वरूप का जो पुरुष ध्यान करता है, तुम्हारे प्रसाद से मधुर बनी हुई उसकी वांणी से अमृत नदी के प्रवाह-सदृश स्तुति-रचना के निर्मल और मधुर वाक्य निकलने लगते हैं ॥13॥

सिन्दूरपांसुपटलच्छुरितामिव द्यां ।
त्वत्तेजसा जतुरसस्नापितमिवोर्वीम् ।
यः पश्यति क्षणमपि त्रिपुरे! विहाय ।
व्रीडां मृडानि! सुदृशस्तमुनुद्रवन्ति ॥14॥

हे त्रिपुरे! आकाश तुम्हारे तेज से ही मानो सिंदूर की धूल से आच्छादित हुआ है और पृथिवी भी तुम्हारे कारण लाक्षा के रस से रंजित जैसी हुई है। जो पुरुष लाज छोड़कर एक क्षण भी ऐसे तुम्हारे स्वरूप को देखता है-चिन्तन करता है। हे मृडाणि! चक्षुरादि इन्द्रियों की शक्तियाँ उसके वश में होकर उसके पीछे-पीछे दौड़ती हैं। (अर्थात् वह जितेन्द्रिय बन जाता है।) ॥14॥

मातर्मुहूर्तमपि यः स्मरति स्वरूपं।
लाक्षारसप्रसरतन्तुनिभं भवत्याः।
ध्यायन्त्यनन्यमनसस्तमनङ्गतप्ताः
प्रद्युम्नसीम्नि सुभगत्वगुणं तरुण्यः ॥15॥

लाक्षारस के बारीक तन्तुओं के समान आपके स्वरूप का जो पुरुष मुहूर्त मात्र भी स्मरण करता है, उस सुन्दर गुण वाले पुरुष का कामदेव से तपायी हुई देवस्त्रियाँ भी एकाग्रचित्त होकर ध्यान करती हैं। तात्पर्य यह है कि उसकी चित्तवृत्तियाँ उसके वशीभूत हो जाती हैं। ॥15॥

योयं चकास्ति गगनार्णवरत्नमिन्दुः।
योयं सुरासुरगुरुः पुरुषः पुराणः।
यद्वाममर्धमिदमन्धकसूनकस्य।
देवि! त्वमेव तदिति प्रतिपादयन्ति ॥16॥

जो आकाश रूपी समुद्र के रत्नभूत चन्द्रमा को प्रकाशित करता है, जो देवता और असुरों का गुरु पुराण पुरुष है और जो महादेव का वामार्ध भाग है, हे देवि! वह तुम ही हो ऐसा शास्त्र प्रतिपादन करते हैं ॥16॥

इच्छानुरूपमनुरूपगुणप्रकर्षम् ।
सङ्कर्षणि त्वमनुसृत्य यदा विभर्षि ।
जायेत स त्रिभुवनैकगुरुस्तदानीम् ।
देवः शिवोपि भुवनत्रयसूत्रधारः ॥17॥

हे संकर्षणि! अपनी इच्छा के अनुकूल (सत्व, रज, तम) गुणों के आधिक्य को अनुसरण करके जब जो गुण भी तुम धारण करती हो, उसी समय उसके अनुरूप ही हे देवि, वे तीन भुवनों के गुरु भगवान् शिव उत्पन्न होकर संसार नाटक के सूत्रधार बनते हैं ॥17॥

रुद्राणि विद्रुममयीं प्रतिमामिव त्वाम् ।
ये चिन्तयन्त्यरुणकान्तिमनन्यरूपाम् ।
तानेत्य पक्ष्मलदृशः प्रसभं भजन्ते ।
कण्ठावसक्तमृदुबाहुलतास्तरुण्यः ॥18॥

हे रुद्राणि! जो साधक प्रवाल रत्न के समान रक्त वर्ण, उपमारहित तुम्हारी मूर्ति का चिन्तन करते हैं, नित नवीन देवस्त्रियाँ गले में कोमल भुज लताएँ डालकर समीप होकर उन साधकों को भजती हैं ॥18॥

त्वद्रूपमुल्लसित-दाडिम-पुष्परक्तम् ।
उद्भावयेन्मदन-दैवतमक्षरं यः ।
तं रूपहीनमपि मन्मथनिर्विशेषम् ।
आलोकयन्त्युरुनितम्बभरास्तरुण्यः ॥19॥

जो भक्त जन विकसित अनार के पुष्प के समान लाल तुम्हारे अविनाशी स्वरूप कामराज बीज की भावना करता है, असुन्दर होने पर भी उस भक्त को कामदेव से भी अधिक सुन्दर मानकर सुन्दर नितम्बो वाली युवतियों(योगिनियाँ) उससे निःशंक प्रेम करती हैं ॥19॥

ध्यातासि हैमवति! येन हिमांशुरश्मि ।
मालामलद्युतिरकल्मषमानसेन ।
तस्याविलम्बमनवद्यमनन्तकल्पम् ।
अल्पैर्दिनैः सृजसि सुन्दरि वाग्विलासम् ॥20॥

हे हिमालय की पुत्री! जिस शुद्ध मन वाले साधक ने चन्द्रदेव की किरणों के समान निर्मल चमक वाले तुम्हारे स्वरूप का ध्यान किया है, हे सुन्दरि! तुम तुरन्त ही उसके निर्दोष तथा चिरकाल तक रहने वाले वाणीविलास को उत्पन्न कर देती हो ॥20॥

आधार-मारुत-निरोधवशेन येषां।
सिन्दूररञ्जित-सरोज-गुणानुकारि।
तीव्रं हृदि स्फुरति देवि! वपुस्त्वदीयं।
ध्यायन्ति तानिह समीहितसिद्धसाध्याः ॥21॥

हे देवि! मूलाधार-पवन के निरोध के बल से सिन्दूर से रँगे हुए कमल के समान तुम्हारा स्वरूप जिन पुरुषों के हृदय में प्रकट हो जाता है, उन पुरुषों का ध्यान सिद्ध और साध्य-देवता पूर्ण अभिलाषा से करते हैं ॥21॥

त्वामैन्दवीमिव कलामनुभालदेशम्।
उद्भासिताम्बरतलामवलोकयन्तः।
सद्यो भवानि! सुधियः कवयो भवन्ति।
त्वं भावनाहितधियां कुलकामधेनुः ॥22॥

हे भवानि! आकाश में दमकती हुई चन्द्रकला की कान्ति जैसे तुम्हारे ललाट पर दमकती हुई कान्ति का अवलोकन करने वाले तत्त्वदर्शी शीघ्र ही बुद्धिमान् कवि बन जाते हैं। जिनकी बुद्धियाँ तुम्हारी भावना में लगी हैं, उनके लिए तुम अभीष्ट फल को देने वाली हो ॥22॥

त्वां व्यापिनीति सुमना इति कुण्डलीति।
त्वां कामिनीति कमलेति कलावतीति।
त्वां मालिनीति ललितेत्यपराजितेति।
देवि! स्तुवन्ति विजये जयेत्युमेति ॥23॥

हे देवि! भक्त जन तुमको व्यापिनी (सर्वव्यापक), सुमना (सुन्दर मन वाली), कामिनी (अभीष्टदात्री) कलावती (सोमसूर्याग्निस्वरूपा) मालिनी (वर्णमाला रूपा), ललिता (सौन्दर्यस्वरूपा), अपराजिता (शत्रुओं से अजित), विजया तथा जया (जय देने वाली) एवं उमा (शिवपत्नी) इन नामों से पुकारते हैं ॥23 ॥

ये चिन्तयन्त्यरुणमण्डलमध्यवर्ति।
रूपं तवाम्ब! नवयावकपंकपिंगम्।
तेषां सदैव कुसुमायुध-वाणभिन्न–
वक्षस्थलाः मृगदृशो वशगाः भवन्ति ॥24॥

हे अम्ब! जो साधक उदीयमान् सूर्य के मण्डल के नवलाक्षारस के समान पिंगल वर्ण वाले तुम्हारे रूप का चिंतन करते हैं, उन पुरुषों को नित्य कामदेव के वाणों से पीड़ित वक्षःस्थल वाली मृगनयनी स्त्रियाँ (योगिनियाँ) उनके वशवर्ती हो जाती हैं ॥24॥

उत्तप्तहेमरुचिरे त्रिपुरे! पुनीहि।
चेतश्चिरन्तनमघौघवनं लुनीहि।
कारागृहे निगडबन्धनपीडितस्य।
त्वत्संस्मृतौ झटिति मे निगडास्त्रुटन्ति ॥25॥

तपाये हुए सोने के समान दीप्तिमती हे त्रिपुरे! (मुझको) पवित्र कीजिए। मेरे चित्त में चिरकाल से अर्जित पापसमूह के वन का नाश कीजिए। संसाररूपी काराग्रह में काम-क्रोध रूपी बेड़ी के बन्धन से पीड़ित व्यक्ति के बन्धन आपके ध्यान से तत्क्षण कट जाते हैं ॥25॥

शर्वाणि! सर्वजनवन्दितपादपद्मे!।
पद्मच्छद-च्छविविडम्बित नेत्रलक्ष्मि!।
निष्पापमूर्तिजनमानसराजहंसि!।
हंसि त्वमापदमनेकविधां जनस्य ॥26॥

हे शर्वाणि! (शिव की हृदयवल्लभे!) हे सर्वजन से वन्दित चरण-कमल वाली! हे अपने नेत्रों की शोभा से कमलपत्रों की शोभा को तिरस्कृत करने वालों, हे निष्पाप पुरुषों के चित्त रूपी सरोवर में विहार करने वाली राजहंसिनी! तुम साधक जन की नाना प्रकार की आपदाओं को दूर करती हो ॥26॥

त्वद्रुपैकनिरूपणप्रणयिताबन्धो दृशोः त्वद्गुण-
ग्रामाकर्णनरागिता श्रवणयोः त्वत्संस्मृतिश्चेतसि।
त्वत्पादार्चनचातुरी करयुगे त्वत्कीर्तनं वाचि मे।
कुत्रापि त्वदुपासनव्यसनता मे देवि! मा शाम्यतु ॥27॥

हे देवि! तुम्हारे रूप के दर्शन का प्रणय मेरे नेत्रों को प्राप्त हो, तुम्हारे गुणसमूह के सुनने का राग मेरे कानों को प्राप्त हो। तुम्हारी नामस्मृति मेरे चित्त को प्राप्त हो, तुम्हारे चरणकमलों की अर्चना की चतुरता मेरे हाथों को प्राप्त हो, तुम्हारी कीर्तना मेरी वाणी को प्राप्त हो और तुम्हारी उपासना की मेरी प्रीति कहीं और कभी भी शान्त न हो ॥27॥

उद्दामकाम-परमार्थ-सरोजषण्ड-
चण्डद्युतिद्युतिमुपासितषट्-प्रकाराम्।
मोह-द्विपेन्द्र कदनोद्यतबोधसिंह-
लीलागुहां भगवतीं त्रिपुरां नमामि ॥28॥

उत्कृष्ट कामराज बीजमन्त्राक्षर रूपी कमल-समूह को विकसित करने वाली रवि-ज्योति-रूपिणी, मूलाधारादि षट्चक्रों में उपासित, अज्ञान रूपी हाथी के मारने में बोध रूप सिंहिनी और, लीला रूपी गुफा में स्थित रहने वाली, त्रिपुरा भगवती को मैं प्रणाम करता हूँ ॥28॥

गणेशवटुकस्तुता रतिसहायकामान्विता।
स्मरारिवरविष्टरा कुसुमवाणवाणैर्युता।
अनंगकुसुमादिभिः परिवृता च सिद्धैस्त्रिभिः।
कदम्बवनमध्यगा त्रिपुरसुन्दरी पातु नः ॥29॥

गणेश और भैरव के द्वारा स्तुति की गयी, रति-प्रीति के सहायक कामदेव से युक्त, शिव के ही आधार वाली, कामदेव के वाणों से युक्त, दिव्यौघ, सिद्धौघ और मानवौघ इन तीन कारणों से परिवृत, कदम्ब वृक्ष के वन में स्थित त्रिपुरसुन्दरी हमारी रक्षा करे ॥29॥

ब्रह्मेन्द्र-रुद्र-हरि-चन्द्र-सहस्ररश्मि-
स्कन्द-द्विपानन-हुताशन-वन्दितायै।
वागीश्वरि त्रिभुवनेश्वरि विश्वमातः।
अन्तर्बहिश्च कृतसंस्थितये नमस्ते ॥30॥

ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र विष्णु, चन्द्रमा, सूर्य, कुमार, गणेश और अग्नि के द्वारा वन्दित तथा अन्तः-बाह्य सर्वत्र स्थित, हे सरस्वती! हे त्रिभुवनेश्वरि! हे जगत्माता! तुमको नमस्कार है।

यः स्तोत्रमेतदनुवासरमीश्वरायाः।
श्रेयस्करं पठति वा यदि वा शृणोति।
तस्येप्सितं फलति राजभिरीड्यतेऽसौ।
जायेत स प्रियतमो हरिणेक्षणानाम् ॥31॥

जो साधक भगवती की इस कल्याणकारिणी स्तुति को प्रतिदिन पढ़ता है या सुनता है, उसकी मनोकामना भगवती पूर्ण करती है। वह चक्रवर्तियों से पूजा जाता है और योगिनियों का भी स्नेहपात्र बनता है ॥31 ॥

इति पञ्चस्तव्यां चर्चास्तवः द्वितीयः समाप्तः।



घटस्तवस्तृतीयः

देवि त्र्यम्बकपत्नि पार्वति सति त्रैलोक्यमातः शिवे।
शर्वाणि त्रिपुरे मृडानि वरदे रुद्राणि कात्यायनि।
भीमे भैरवि चण्डि शर्वरि कले कालक्षये शूलिनि।
त्वत्पादप्रणताननन्यमनसः पर्याकुलान्पाहि नः ॥1॥

हे देवि! (चमकती हुई मूर्ति वाली)! हे त्रिनेत्रधारी शिव की प्राणवल्लभे! हे हिमालय की पुत्रि! हे दक्ष की पुत्रि! हे तीन लोक की माता! हे कल्याणकारिणि! हे शिवप्रिये! हे त्रिपुरे! (बीजत्रय रूप वाली) हे सुख देने वाली! हे वर देने वाली! हे रुद्र की शक्तिरूपे! हे कात्यायनि! हे शत्रुपक्ष को भय देने वाली! हे भयानक शब्द करने वाली! हे भयानक तेज वाली! हे रात्रिस्वरूपे! हे वीर्यवति! हे काल को क्षय करने वाली! हे त्रिशूल को धारण करने वाली! तुम्हारे चरणों पर पड़े हुए एकाग्र मन वाले तथा अत्यन्त व्याकुल हम सब की रक्षा करो ॥1॥

उन्मत्ता इव सग्रहा इव विषव्यासक्तमूर्च्छा इव
प्राप्तप्रौढमदा इवातिविरहग्रस्ता इवार्ता इव।
ये ध्यायन्ति हि शैलराजतनयां धन्यास्त एकाग्रतः।
त्यक्तोपाधिविवृद्धरागमनसो ध्यायन्ति वामभ्रुवः ॥2॥

उन्मत्तचित्त जैसे, सूर्य आदि ग्रहों की दशा में फंसे हुए जैसे अथवा किसी आग्रह (हठ) में पड़े हुए जैसे, विष से मूर्छित जैसे, बड़े घमण्डी जैसे, अथवा अत्यन्त तीव्र मद (नशा) में पड़े हुए जैसे, अति विरह से पीड़ित जैसे, दीनता से पूर्ण जैसे, जो (भाग्यशील साधक) पर्वतपुत्री के ध्यान में इस तरह एकाग्र चित्त हैं, वे धन्य हैं। इन्द्रिय-वृत्तियाँ, उपाधियों को छोड़ कर रागपूर्ण मन से उनका चिन्तन करती हैं अर्थात् उनके वश में हो जाती हैं ॥2॥

देवि! त्वां सकृदेव यः प्रणमति क्षोणीभृतस्तं नम-
न्त्याजन्म-स्फुरदंघ्रिपीठविलुठत्कोटीरकोटिच्छटाः।
यस्त्वामर्चति सोऽर्च्यते सुरगणैर्यः स्तौति स स्तूयते।
यस्त्वां ध्यायति तं स्मरार्तिविधुरा ध्यायन्ति वामभ्रुवः ॥3॥

हे देवि! जो पुरुष तुमको एक बार प्रणाम करता है, उसके पादपीठ पर राजा लोग अपने रत्नों से चमकते मुकुटों को रखकर आजन्म उसके अधीन रहते हैं। जो पुरुष तुम्हारी पूजा करता है, वह देवगणों से पूजा जाता है। जो तुम्हारी स्तुति करता है, वह देवताओं से स्तुति पाता है, जो तुम्हारा ध्यान करता है, कुटिल नेत्र वाली कामपीड़ित (अथवा कामोद्दीप्त इन्द्रियाँ) योगिनियाँ उसका ध्यान करती हैं। अर्थात् उसके वश में हो जाती हैं ॥3॥

ध्यायन्ति ये क्षणमपि त्रिपुरे! हृदि त्वां।
लावण्ययौवनधनैरपि विप्रयुक्ताः।
ते विस्फुरन्ति ललितायतलोचनानां।
चित्तैक-भित्ति-लिखित-प्रतिमाः पुमांसः ॥4॥

हे मातः त्रिपुरे! सौन्दर्य तारुण्य और धन से भी हीन, जो साधक क्षणभर भी तुम्हारे स्वरूप का हृदय में ध्यान करते हैं, वे सुन्दर और विशाल नेत्रों वाली स्त्रियों अथवा अष्ट सिद्धियों के चित्त रूपी चित्रफलक पर उल्लिखित हो जाते हैं। अर्थात् उन्हे सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं ॥4॥

एतं किं नु दृशा पिबाम्युत विशाम्यस्याङ्गमङ्गैर्निजैः।
कि वाऽमुं निगलाम्यनेन सहसा किं वैकतामाश्रये।
तस्येत्थं विवशो विकल्पघटनाकूतेन योषिज्जनः।
किं तद्यन्न करोति देवि! हृदये यस्य त्वमावर्तसे ॥5॥

इस साधक के रूप का मैं नेत्रों से पान क्यों न करूँ, अथवा अपने अंगों सहित इसके शरीर में प्रवेश क्यों न कर जाऊँ, अथवा क्यों न मैं इस को अपने भीतर ही समा लूँ, अथवा क्यों न मैं इसके साथ एकता (अभेद) पाऊँ; सहसा आश्चर्यमय एवं विकल्पात्क ऐसी अनुभूति करती हुई स्त्रियाँ अथवा इन्द्रियशक्तियाँ उसके अधीन हो जाती हैं; हे देवि! तुम जिसके अन्तःकरण में रमण करती हो। और क्या है, जो तुम उसके लिए नहीं करती हो। अर्थात् तुम उसके लिए सब कुछ कर देती हो ॥5॥

विश्वव्यापिनि! यद्वदीश्वर इति स्थाणावनन्याश्रयः।
शब्दः शक्तिरिति त्रिलोकजननि! त्वय्येव तथ्यस्थितिः।
इत्थं सत्यपि शक्नुवन्ति यदिमाः क्षुद्रा रुजोबाधितुं।
त्वद्भक्तानपि न क्षिणोषि च रुषा तद्देवि चित्रं महत् ॥6॥

हे जगत् में व्याप्त रहने वाली! जिस प्रकार ईश्वर शब्द ईश्वर पर ही चरितार्थ होता है, अन्य किसी पर नहीं, उसी प्रकार हे त्रिजगत्मातः! शक्ति शब्द तुम पर ही चरितार्थ होता है, अन्य पर नहीं। यद्यपि ईश्वरभक्तों को भवबाधा दुःखित कर सकती है, किन्तु हे देवि! तुम अपने भक्तों को क्रोध से भी क्षुब्ध नहीं होने देती हो; यह तो अचरज की बात है ॥6॥

इन्दोर्मध्यगतां मृगाङ्कसदृशच्छायां मनोहारिणीं।
पाण्डूत्फुल्लसरोरुहासनगतां स्निग्धप्रदीपच्छविम्।
वर्षन्तीमिमृतं भवानि! भवतीं ध्यायन्ति ये देहिन-
स्ते निर्मुक्तरुजो भवन्ति विपदः प्रोज्झन्ति तान्दूरतः ॥7॥

हे भवानि! चन्द्रमा के मध्य, खिले हुए स्थित मृगचिह्न के सदृश तुम्हारी मनोहर कान्ति का और पीतवर्णी कमल पर विराजित कोमल दीप्ति का तथा अमृत बरसाती हुई छवि का जो साधक ध्यान करते हैं, वे नीरोग हो जाते है और विपदायें उनको छोड़ देती हैं, (अर्थात् किसी प्रकार का रोग तथा कष्ट उन पर आक्रमण नहीं कर सकता) ॥7॥

पूर्णेन्दोः शकलैरिवातिबहुलैः पीयूषपूरैरिव।
क्षीराब्धेः लहरीभरैरिव सुधापङ्कस्य पिण्डैरिव।
प्रालेयैरिव निर्मितं तव वपुर्ध्यायन्ति ये श्रद्धया
चित्तान्तर्निहतार्तिताप-विपदस्ते सम्पदं विभ्रति ॥8॥

अत्यधिक अमृत से भरे हुए पूर्णचन्द्र-खण्ड जैसे, क्षीरसागर की प्रवाहित लहरों जैसे, प्रगाढ़ अमृत-पिण्ड जैसे और हिम (बर्फ) निर्मित जैसे तुम्हारे स्वरूप को जो साधक श्रद्धा से ध्यान करते हैं, उनकी चिन्ता, सन्ताप और विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं तथा वे लक्ष्मी के पात्र बन जाते हैं ॥8॥

ये संस्मरन्ति तरलां सहजोल्लसन्तीं।
त्वां ग्रन्थिपञ्चकभिदं तरुणार्कशोणाम्।
रागार्णवे बहलरागिणि मज्जयन्तीं।
कृत्स्नं जगद्दधति चेतसि तान्मृगाक्ष्यः ॥9॥

जो साधक बिजली के समान चंचल और, सहज रूप से प्रकाशित, षटदल – दशदल – द्वादशदल – षोडश दल – द्विदल अथवा स्वाधिष्ठानादि पंच ग्रन्थियों के नाम वाली, बाल-सूर्य जैसे रक्त वर्ण वाली, अति अनुराग वाली, अविद्या – अस्मिता– राग-द्वेष – अभिनिवेश रूप प्रपंच के समुद्र में सब जगत् को डुबाने वाली, तुम को स्मरण करते हैं; उनको मृगनयनी स्त्रियाँ अथवा योगिनियां चित्त में धारण करती हैं ॥9॥

लाक्षारस-स्नपितपंकज-तंतुतन्वीम् ।
अन्तःस्मरत्यनुदिनं भवती भवानि ।
यस्तं स्मरप्रतिममप्रतिमस्वरूपा ।
नेत्रोत्पलैर्मृगदृशो भृशमर्चयन्ति ॥10॥

हे भवानि! लाक्षारस से रँगे हुए कमल-तन्तु जैसे रक्त वर्ण वाले तुम्हारे कोमल स्वरूप का जो साधक प्रतिदिन अन्तःकरण में चिन्तन करता है, कामदेव के समान रूप वाले उसका अलौकिक स्वरूप वाली मृगदृगी योगिनियाँ अपने नेत्र कमलों से निरन्तर अर्चन करती हैं ॥10॥

स्तुमस्त्वां वाचमव्यक्तां हिमकुन्देन्दुरोचिषाम् ।
कदम्बमालां बिभ्राणामापादतललम्बिनीम् ॥11॥

हिम (बर्फ), कुन्द (एक श्वेतपुष्प), इन्दु (चन्द्रमा) की भाँति चमकती हुई, मूर्तिवाली गले में चरणों तक लटकती हुई, कदम्ब फूलों की माला को धारण करती हुई अव्यक्त वाग्देवी तुम्हारी हम स्तुति करते हैं ॥11॥

मूर्ध्नीन्दोः सितपङ्कजासनगतां प्रालेयपाण्डुत्विषं
वर्षन्तीममृतं सरोरुहभुवो वक्त्रेऽपि रंध्रेऽपि च।
अच्छिन्ना च मनोहरा च ललिता चातिप्रसन्नापि च
त्वामेव स्मरतां स्मरारिदयिते! वाक्सर्वतो वल्गति ॥12॥

हे कामदेव के शत्रु शिव की प्रिये! हे अमृत कलारूप नाद-स्थान में श्वेत-कमल पर स्थिति करने वाली! हे बर्फ के समान श्वेत दीप्ति वाली! हे मुख और ब्रह्मरन्ध्र के कमल स्थान से अमृत की वर्षा करने वाली! निर्मल, मनोहर, सुन्दर और प्रसाद गुणों वाली सरस्वती, तुम को जो स्मरण करते हैं, उनकी वाणी सिद्ध हो जाती है ॥12॥

ददातीष्टान्भोगान् क्षपयति रिपून् हन्ति विपदो।
दहत्याधीन्व्याधीञ् शमयति सुखानि प्रतनुते।
हठादन्तर्दुःखं दलयति पिनष्टीष्टविरहं।
सकृद् ध्याता देवी किमिव निरवद्यं न कुरुते ॥13॥

एक बार देवी के स्मरण करने वाले साधक को कौन सी दुर्लभ वस्तु सुलभ नहीं होती है? देवी उसको वाञ्छित भोग देती है। शत्रुओं को दूर करती है। विपदाओं का नाश करती है। मन की पीड़ाओं को जला देती है। शरीर के सन्तापों को शान्त करती है। सुख को बढ़ाती है। हृदयान्तर्गत दुःखों का नाश करती है। प्रियतमों के विरह को दूर करती है ॥13॥

यस्त्वां ध्यायति वेत्ति विन्दति जपत्यालोकते चिन्तय-
त्यन्वेति प्रतिपद्यते कलयति स्तौत्याश्रयत्यर्चति।
यश्च त्र्यम्बकवल्लभे! तव गुणानाकर्णयत्यादरात्।
तस्य श्रीर्न गृहादपैति विजयस्तस्याग्रतो धावति ॥14॥

जो साधक तुम्हारा स्मरण करता है, बुद्धि से जानता है, विद्या से खोजता है, शुद्ध मन से जपता है, ज्ञाननेत्रों से देखता है, श्रवण-मनन से विचारता है, कर्मेन्द्रियों से अनुगमन करता है। ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त करता है, स्वरूप का चिन्तन करता है, स्तोत्रों से स्तुति करता है, आपका ही सहारा ले लेता है। विधि से अर्चना करता है, हे महादेव की प्रियतमे ! जो साधक तुम्हारे त्रिगुणात्मक कर्मों को आदर से सुनता है, उस साधक के घर से लक्ष्मी कभी नहीं जाती और विजय उसके आगे-आगे दौड़ती है ॥14 ॥

किं किं दुःखं दनुजदलिनि! क्षीयते न स्मृतायां।
का का कीर्तिः कुलकमलिनि! ख्याप्यते न स्तुतायाम्।
का का सिद्धिः सुरवरनुते! प्राप्यते नार्चितायां।
कं कं योगं त्वयि न चिनुते चित्तमालम्बितायाम् ॥15॥

हे असुरकुल को नाश करने वाली! तुम्हारा स्मरण करने वालों का कौन-कौन दुःख क्षीण नहीं होता। हे कुल को बढ़ाने वाली देवी! तुम्हारी स्तुति करने वालों को कौन-कौन सी कीर्ति सिद्ध नहीं होती? हे ब्रह्मादि देवताओं की पूज्य भगवती! तुम्हारी पूजा करने वालों को कौन-कौन सी सिद्धि प्राप्त नहीं होती; तुम्हारे चिन्तन में चित्त लगाने वालों को कौन-कौन सा योग प्राप्त नहीं होता ॥15॥

ये देवि! दुर्धरकृतान्तमुखान्तरस्थाः।
ये कालि! कालघनपाशनितान्तबद्धाः।
ये चण्डि! चण्डगुरु-कल्मष-सिन्धुमग्नाः।
तान्पासि मोचयसि तारयसि स्मृतैव ॥16॥

हे देवि! जो साधक तुम्हारा स्मरण करते हैं, उनको तुम कठिन महाकाल के मुख में पड़ने से बचाती हो। हे कालि! उनको यमपाशों के दृढ़ बन्धनों से तुम छुड़ाती हो। हे चण्डि! उनको पापरूपी समुद्र में डूबने से बचाकर पार करती हो ॥16॥

लक्ष्मीवशीकरणचूर्णसहोदराणि।
त्वत्पादपंकजरजांसि चिरं जयन्ति।
यानि प्रणाममिलितानि नृणां ललाटे
लुम्पन्ति दैवलिखितानि दुरक्षराणि ॥17॥

हे माता! तुम्हारे चरण कमलों की धूलि के चूर्ण जो कि महालक्ष्मी को अधीन करने में सहायक हैं, उनकी चिरकाल तक विजय हो। वे रज के कण तुमको प्रणाम करने के समय जिस के माथे पर लगते हैं, उस के विधाता के लिखे हुए अनिष्टसूचक अक्षर मिट जाते हैं ॥17॥

रे मूढाः! किमयं वृथैव तपसा देहः परिक्लिश्यते
यज्ञैर्वा बहुदक्षिणैः किमितरे रिक्तीक्रियन्ते गृहाः।
भक्तिश्चेदविनाशिनी भगवतीपादद्वयी सेव्यताम्।
उन्निद्राम्बुरुहातपत्र-सुभगा लक्ष्मीः पुरो धावति ॥18॥

हे मूर्खो! तपस्या (चान्द्रायणादि व्रतों) से अपने शरीरों को व्यर्थ में कष्ट क्यों देते हो ? बहुत सी दक्षिणा दिये जाने वाले यज्ञों को करके क्यों अपने घरों को खाली करते हो ? यदि अविनाशिनी भक्ति प्राप्त करनी है, तो भगवती के चरण कमलों की सेवा करो। तब फिर विकसित कमल के दल को धारण करने वाली सुन्दर लक्षमी तुम्हारे आगे-आगे दौड़ने लगेगी ॥18॥

याचे न कंचन न कंचन वंचयामि।
सेवे न कंचन निरस्तसमस्तदैन्यः।
श्लक्ष्णं वसे मधुरमद्मि भजे वरस्त्रीं।
देवी हृदि स्फुरति मे कुलकामधेनुः ॥19॥

मेरे हृदय में तो समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली देवी विद्यमान है। अतः अब मै न तो किसी से याचना करूँगा, किसी को धोखा दूँगा और न ही अपनी दीनता को दूर करने के लिए किसी अन्य की सेवा करूँगा। मैं तो कोमल-कोमल वस्त्र धारण करूँगा, सुन्दर स्थान पर रहूँगा, मधुर भोजन करूँगा और कुलीन स्त्री (चित्शक्ति) का भोग करूँगा ॥19॥

शब्दब्रह्ममयि! स्वच्छे! देवि! त्रिपुरसुन्दरि!
यथाशक्ति जपं पूजां गृहाण परमेश्वरि ॥20॥

हे अनाहत शब्दस्वरूपे! हे त्रिमलों से रहित स्वरूप वाली, हे देवि! त्रिपुरसुन्दरी! मैं ने यथाशक्ति तुम्हारी जपपूजादि की है। हे परमेश्वरि! तुम इसको स्वीकार करो ॥20 ॥

नन्दन्तु साधकाः सर्वे विनश्यन्तु विदूषकाः।
अवस्था शाम्भवी मेऽस्तु प्रसन्नोऽस्तु गुरुः सदा ॥21॥

सब साधक पुरुष सुखी रहें। सब दोष करने वाले नष्ट हो जावें। शिवस्वरूपिणी अवस्था मुझे प्राप्त हो। गुरुदेव सदा प्रसन्न रहें, यही दास की प्रार्थना है ॥21 ॥

दर्शनात्पापशमनी जपान्मृत्युविनाशिनी।
पूजिता दुःखदौर्भाग्यहरा त्रिपुरसुन्दरी ॥22॥

त्रिपुरसुन्दरी भगवती के दर्शन से पापों का नाश होता है। जप करने से अकाल मृत्यु का नाश होता है। पूजन करने से कष्ट और दुर्भाग्यों का नाश होता है ॥22॥

नमामि यामिनीनाथलेखालंकृतकुन्तलाम् ।
भवानीं भवसन्तापनिर्वापणसुधानदीम् ॥23॥

जिसने चन्द्रकला से अपने केशबन्ध को अलंकृत किया है और संसार के संताप को दूर करने के लिए जो अमृत नदी रूपा है, ऐसी भवानी को मैं नमस्कार करता हूं ॥23॥

मंत्रहीनं क्रियाहीनं विधिहीनं च यद्गतम् ।
त्वया तत्क्षम्यतां देवि! कृपया परमेश्वरि! ॥24॥

हे देवि! मनन-रहित मनमोच्चारण करके, अज्ञानतावश समुचित क्रिया न करते हुए, वेदोक्त विधि से रहित, जो कुछ मैंने आपकी पूजा में किया है; हे परमेश्वरि! कृपा करके वह सब क्षमा कर दीजिए। ॥24॥

इति श्री पञ्चस्तव्यां घटस्तवस्तृतीय समाप्तः ।



अम्बास्तवश्चतुर्थः

उों यामामनन्ति मुनयः प्रकृतिं पुराणीं।
विद्येति यां श्रुति-रहस्यविदो वदन्ति।
तामर्धपल्लवित-शङ्कर-रूप-मुद्रां।
देवीमनन्यशरणः शरणं प्रपद्ये ॥1॥

जिस (माया-शक्ति) को मुनि लोग मूल-प्रकृति कहते हैं, वेदरहस्य को जानने वाले जिस को विद्या कहते हैं, उसी शिव की अर्धरूपमुद्रा को प्रकट करने वाली अर्थात् उनकी अर्धांगिनी देवी की मैं एकाग्रचित्त होकर शरण लेता हूं ॥1॥

अम्बस्तवेषु तव तावदकर्तृकाणि।
कुण्ठीभवन्ति वचसामपि गुम्फनानि।
डिम्भस्य मे स्तुतिरसावसमञ्जसापि।
वात्सल्य-निघ्नहृदयां भवतीं धिनोति ॥2॥

हे माता! स्तुति-रचना में चतुर होने पर भी ब्रह्मा आदि देवता तुम्हारी स्तुति करने में असमर्थ हैं। फिर भी मुझ मूर्ख बालक की यह असमंजस स्तुति वात्सल्यपूर्ण हृदय वाली आपको तृप्त करने वाली हो।

व्योमेति विन्दुरिति नाद इतीन्दुलेखा।
रूपेति वाग्भवतनूरिति मातृकेति।
निःष्यन्दमान-सुखबोध-सुधा-स्वरूपा।
विद्योतसे मनसि भाग्यवतां जनानाम् ॥3॥

चिदाकाश रूप से, चिद्विमर्ष रूप से, चित्प्रकाश रूप से, अमाकला रूप से, परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरी-वाग्भूमि रूप से, अकारादि क्षकारपर्यन्त अक्षर-राशि रूप से, निकलते हुए शुद्ध बोध की अमृतप्रवाहरूपा तुम भाग्यशील पुरुषों के ही मन में प्रकाशित होती हो ॥3॥

आविर्भवत्पुलक-सन्ततिभिः शरीरैः।
निःष्यन्दमान सलिलैर्नयनैश्च नित्यम्।
वाग्भिश्च गद्गदपदैश्च उपासते ये।
पादौ तवाम्ब भुवनेषु त एव धन्याः ॥4॥

हे माता! रोमांच-पंक्ति-पूर्ण शरीरों से, धारासार आँसू निकालते हुए नेत्रों से और गद्गद पदों वाली वाणी से जो साधक तेरे चरणों की उपासना करते हैं; वे ही तीनों भुवनों में धन्य हैं ॥4॥

वक्त्रं यदुद्यतमभीष्टुतये भवत्याः ।
स्तुभ्यं नमो यदपि देवि! शिरः करोति ।
चेतश्च यत्त्वयि परायणमम्ब! तानि ।
कस्यापि कैरपि भवन्ति तपोविशेषैः ॥5॥

हे अम्ब! तुम्हारी स्तुति करने के लिए जिन साधकों का मुख उद्यत है, हे देवि! जिन का शिर तुम्हारे प्रणाम के लिए उद्यत है और जिनका मन तुम पर निरन्तर आसक्त है, अपनी विशेष तपस्या के प्रभाव से विरला साधक ही ऐसी साधना करने में समर्थ हो पाते हैं।

मूलालवाल-कुहरादुदिता भवानि ।
निर्भिद्य षट्सरसिजानि तडिल्लतेव ।
भूयोऽपि तत्र विशसि ध्रुवमंडलेन्दु-
निःष्यन्दमान-परमामृत-तोय-रूपा ॥6॥

हे शिवप्रियतमे! मूलाधार-रन्ध्र से उठकर बिजली की भाँति चमकती हुई, मूलाधार-स्वाधिष्ठान-मणिपूरक-अनाहत-विशुद्ध-आज्ञाचक्र नाम के षट्कमलों का भेदन करके तुम ब्रह्मरन्ध्रस्थान में से अमृतकला रूप में बहती हुई फिर वहीं प्रवेश करती हो (अर्थात् मूलाधार से आज्ञाचक्र तक आरोह करके फिर आज्ञाचक्र से मूलाधार तक अवरोह करती हो) ॥6॥

दग्धं यदा मदनमेकमनेकधा ते।
मुग्धः कटाक्ष-विधिरङ्कुरयां चकार।
धत्ते तदाप्रभृति देवि! ललाटनेत्रं।
सत्यं ह्रियेव मुकुलीकृतमिन्दुमौलिः ॥7॥

हे देवि! जब महादेव जी ने एक कामदेव को जला दिया, तो तुम ने अनायास ही कटाक्षक्रम से उस कामदेव को अनेक रूपों में उत्पन्न कर दिया। तभी से महादेव ने ललाट के तीसरे नेत्र को लज्जा से सचमुच संकुचित कर लिया है ॥7॥

अज्ञात-संभवमनाकलितान्वयायं।
भिक्षुं कपालिनमवाससमद्वितीयम्।
पूर्वं करग्रहण-मङ्गलतो भवत्याः।
शम्भुं क एव बुबुधे गिरिराज कन्ये! ॥8॥

हे पार्वति! स्वयम्भू होने से अविदित जन्म वाले कुलपरम्परा-रहित भिक्षुक, कपालधारी, दिगम्बर और असहाय, ऐसे महादेव जी को तुम्हारे मांगलिक पाणिग्रहण से पहले कौन जानता था? (अर्थात् जबसे तुमने उनके साथ विवाह किया, तब से ही उन्हें सबने जाना) ॥8॥

चर्माम्बरं च शवभस्मविलेपनं च।
भिक्षाटनं च नटनं च परेतभूमौ।
वेताल-संहति-परिग्रहता च शम्भोः।
शोभां विभर्ति गिरिजे तव साहचर्यात् ॥9॥

हे गिरिजा! गजचर्म धारण करने वाले, मृतशरीर के भस्म का लेप करने वाले, भिक्षा के लिए फिरने वाले, श्मशानभूमि में नृत्य करने वाले, वेताल (भूत-प्रेत-पिशाचों) के परिवार वाले शम्भु, तुम्हारे साहचर्य से ही शोभा को धारण करते हैं ॥9॥

कल्पोप-संहरण-केलिषु पण्डितानि।
चण्डानि खण्डपरशोरपि ताण्डवानि।
आलोकनेन तव कोमलितानि मातः।
लास्यात्मना परिणमन्ति जगद्विभूत्यै ॥10॥

महादेव के कठोर ताण्डव नृत्य, जो कि कल्पों के संहार के खेल में निपुण हैं, हे माता! तुम्हारे दृष्टिपात मात्र से ही कोमल होकर लास्य (नृत्य) में बदल जाते हैं और जगत्-विभुति के उत्पन्न करने में (सृष्टि उत्पन्न करने में) समर्थ हो जाते हैं ॥10॥

जन्तोरपश्चिमतनोः सति कर्मसाम्ये।
निश्शेषपाश-पटलच्छिदुरा निमेषात्।
कल्याणि! दैशिक-कटाक्ष-समाश्रयेण।
कारुण्यतो भवसि शाम्भववेददीक्षा ॥11॥

पूर्वजन्म के शुभाशुभ कर्मों के साम्य होने पर भी पाशबद्ध जीव यदि गुरुकृपा से तुम्हारी शरण में आये, तो सम्पूर्ण पापों को क्षण में दूर करने वाली हे कल्याणि! दयावती होकर उसके लिए तुम शाम्भव वेद (तन्त्रविद्या) की दीक्षा बन जाती हो, जिससे वह पाशमुक्त हो जाता है।

मुक्ताविभूषणवती नवविद्रुमाभा।
यच्चेतसि स्फुरसि तारकितेव सन्ध्या।
एकः स एव भुवनत्रयसुन्दरीणां।
कन्दर्पतां व्रजति पञ्चशरीं विनापि ॥12॥

मोतियों के भूषणों से अलंकृत, नवीन मूगों की आभा से शोभायमान (नक्षत्रों) तारों वाली संध्या जैसा तुम्हारा स्वरूप, जिस के चित्त में विलसित होता है, वही एक पुरुष काम-शक्ति-रहित होते हुए भी तीनों भुवनों की सुन्दरियों के लिए कामदेव जैसा बन जाता है ॥12॥

ये भावयन्त्यमृतवाहिभिरंशुजालैः।
आऽप्यायमान-भुवनाममृतेश्वरीं त्वाम्।
ते लङ्घयन्ति ननु मातरलङ्घनीयां।
ब्रह्मादिभिः सुरवरैरपि कालकक्ष्याम् ॥13॥

हे माता! अपनी अमृत प्रवाहित करने वाली किरणों से तीनों भुवनों को तृप्त करने वाली अमृतेश्वरी स्वरूपा आपकी जो पुरुष भावना करते हैं, वे उस कालमर्यादा से निश्चय ही पार चले जाते हैं, जिस कालमर्यादा से पार जाना ब्रह्मादि श्रेष्ठ देवताओं को भी कठिन है ॥13॥

यः स्फटिकाक्षगुण-पुस्तक-कुण्डिकाढ्यां।
व्याख्या समुद्यतकरां शरदिन्दुशुभ्राम्।
पद्मासनां च हृदये भवतीमुपास्ते।
मातः! स विश्वकवितार्किक-चक्रवर्ती ॥14॥

हे माता! जो साधक श्वेत कमलों के आसन पर विराजमान, शरत-पूर्णिमा के चन्द्रमा जैसी कान्ति से सुशोभित, स्फटिक-अक्षमाला, पुस्तक एवं कमण्डलु धारिणी, व्याख्यान के लिए उठे हाथ वाली, आपके ऐसे स्वरूप का हृदय में ध्यान करता हुआ उपासना करता है, वह विश्व के कवियों और तार्किकों का चक्रवर्ती अर्थात् महाविद्वान् बन जाता है। ॥14॥

बर्हावतंस-युतबर्वर-केशपाशं।
गुञ्जावलीकृत-घनस्तनहार-शोभाम्।
श्यामां प्रवालवदन-सुकुमारहस्तां।
त्वामेव नौमि शबरीं शबरस्य जायाम् ॥15॥

मोरपंखयुक्त मनोहर केशबन्ध वाली, स्तनों पर पड़े हुए गुंजा फलों के बने हुए हारों से अनोखी शोभा वाली, श्यामरूप, प्रवालवर्णी मुख वाली और कोमल हाथों वाली, शबर (शिव) पत्नी, शबरी (शिवा) मैं तुमको नमस्कार करता हूँ ॥15॥

अर्धेन किं नवलताललितेन मुग्धे।
क्रीतं विभोः परुषमर्धमिदं त्वयेति।
आलीजनस्य परिहासवचांसि मन्ये।
मन्दस्मितेन तव देवि जडीभवन्ति ॥16॥

हे महासुन्दरी, नवीन बेल जैसे कोमल और मनोहर स्वरूप वाली तुमने अपने कोमल अर्धांग के बदले स्वामी शिव के इस कठोर दक्षिण अधोग को मोल क्यों ले लिया? हम जानते हैं कि सखी जनों के व्यंग्यपूर्वक कहे गये ये वचन हे देवि! तुम्हारी मन्द मुस्कान से जड़ (शांत) हो जाते हैं ॥16॥

ब्रह्माण्ड-बुदबुद-कदम्बक संकुलोऽयं।
मायोदधिः विविधदुःख-तरङ्गमालः।
आश्चर्यमम्ब! झटिति प्रलयं प्रयाति।
त्वद्ध्यान-संतति-महावडवामुखाग्नौ ॥17॥

यह माया रूप समुद्र, ब्रह्माण्ड रूप जल के बुलबुलों के समूह से युक्त है। विविध प्रकार की दुःख रूपी तरंगमालाओं से पूर्ण है। हे अम्ब! आश्चर्य है कि तुम्हारे ध्यान रूपी वड़वाग्नि में यह माया रूपी समुद्र; तरंग और बुद्बुदों सहित शीघ्र ही लय हो जाता है ॥17॥

दाक्षायणीति कुटिलेति गुहारणीति।
कात्यायनीति कमलेति कलावतीति।
एका सती भगवती परमार्थतोऽपि।
संदृश्यसे बहुविधा ननु नर्तकीव ॥18॥

दक्ष प्रजापति की पुत्री सती, मूलाधारवासिनी कुण्डलिनी, हृद्गुफावासिनी अंतर्यामिनी (चित् शक्तिः), कालिका रूपा, लक्ष्मी रूपा, कलावती (षोडश कलारूपा), इस प्रकार एक ही सती भगवती तुम परमार्थरूप (स्वरूप) से नर्तकी-तुल्य विविध रूपों को धारण करने वाली दिखाई देती हो ॥18॥

आनन्दलक्षणमनाहतनाम्नि देशे।
नादात्मना परिणतं तव रूपमीशे!
प्रत्यङ्मुखेन मनसा परिचीयमानं।
शंसन्ति नेत्रसलिलैः पुलकैश्च धन्याः ॥19॥

हे ईशे! वे पुरुष धन्य हैं, जो अनाहतस्थान (हृदय) में तुम्हारे सुखस्वरूप को, नादरूप में परिणत करके सर्वगत मन से अभ्यास करते हुए रोमांचयुक्त होकर, नेत्रों से आँसू बहाते हुए तुम्हारी कीर्ति का गान करते हैं ॥19॥

त्वं चन्द्रिका शशिनि तिग्मरुचौ रुचिस्त्वं।
त्वं चेतनासि पुरुषे पवने बलं त्वम्।
त्वं स्वादुतासि सलिले शिखिनि त्वमूष्मा।
निःसारमेतदखिलं त्वदृते यदि स्यात् ॥20॥

हे भगवति! तुम चन्द्रमा में जगदाह्लादिनी चाँदनी हो, तुम सूर्य में दीप्ति हो। तुम पुरुष में चेतना हो। तुम पवन में बल हो तुम जल में स्वाद हो, तुम अग्नि में ऊष्मा (ताप) हो। जो कुछ जगत् में तुम से पृथक् है, वह असार है। अर्थात् तुम से (पृथक्) भिन्न कुछ भी नहीं है ॥20॥

ज्योतींषि यद्दिवि चरन्ति यदन्तरिक्षं
सूते पयांसि यदहिर्धरणीं च धत्ते।
यद्वाति वायुरनलो यदुदर्चिरास्ते
तत्सर्वमम्ब! तव केवलमाज्ञयैव ॥21॥

हे माता! प्रकाशमान चन्द्र-सूर्य-तारे जो आकाश में घूमते हैं, मेघ जो अन्तरिक्ष (आकाश) में पानी बरसाता है, शेषनाग जो पृथिवी को धारण करता है, वायु जो चलती है, आग जिसकी ज्योति ऊपर उठती है, यह सब केवल तुम्हारी आज्ञा से ही होता है ॥21॥

सङ्कोचमिच्छसि यदा गिरिजे! तदानीं।
वाक्तर्कयोस्त्वमसि भूमिरनामरूपा।
यद्वा विकासमुपयासि यदा तदानीं।
त्वन्नामरूपगणनाः मुखरीभवन्ति ॥22॥

हे गिरिजे! जिस काल में तुम संकोच या जगत् का उपशम् चाहती हो, उस समय तुम मन और वाणी से अगोचर और अनाम बन जाती हो अर्थात् समस्त जगत् शून्य का स्थान बन जाता है। फिर जब तुम विकास वा उन्मेष चाहती हो, तो तुम्हारे नामों और रूपों की गणना गूँज उठती है अथवा तुम्हारे ही अनेक रूप-नाम धारिणी सृष्टि प्रकट हो जाती है ॥22॥

भोगाय देवि! भवतीं कृतिनः प्रणम्य।
भ्रूकिंकरी-कृत-सरोजगृहाः सहस्राः।
चिन्तामणि-प्रचय-कल्पित-केलिशैले।
कल्पद्रुमोपवन एव चिरं रमन्ते ॥23॥

हे देवि! सुकृत करने वाले जो पुरुष भोगों की लालसा से तुमको प्रणाम करते हैं, वे भौंह चढ़ाने मात्र से सहसा सम्पूर्ण ऐश्वर्य-पूर्ण ग्रहों के स्वामी बन जाते हैं और चिन्तामणि रत्नों से बनाये हुए क्रीड़ा-पर्वतों पर कल्पवृक्ष के बगीचों में चिरकाल विचरते हैं ॥23॥

हन्तु त्वमेव भवसि त्वदधीनमीशे!
संसारतापमखिलं दयया पशूनाम्।
वैकर्तनी-किरणसंहतिरेव शक्ता।
घर्मं निजं शमयितुं निजैव वृष्ट्या ॥24॥

हे ईशे! कर्मपाशों में बँधे हुए मनुष्य रूप पशुओं पर दया करके तुम्हारे ही अधीन जो त्रिविध ताप हैं, उनका नाश करने के लिए तुम ही समर्थ हो। उसी प्रकार जिस प्रकार सूर्य की किरणपंक्तियाँ अपने ही वर्षण से अपनी गरमी को शांत करने में समर्थ होती हैं ॥24॥

शक्तिः शरीरमधिदवैतमन्तरात्मा
ज्ञानं क्रियाकरणमासनजालमिच्छा।
ऐश्वर्यमायतनमावरणानि च त्वं।
किं तन्न यद्भवसि देवि! शशाङ्कमौलेः ॥25॥

तुम शक्ति हो, शरीर हो, अधिदैव हिरण्यगर्भ-रूप हो, जीवात्मा हो, ज्ञान-शक्ति हो, क्रिया-शक्ति हो, इन्द्रिय-शक्ति हो, ग्रहादिकों का स्थान हो, परिवार देवता हो, इच्छाशक्ति हो, ऐश्वर्यों का घर हो और आवरण रूपा हो। हे देवि! चन्द्रकलाधारी महादेव की तुम क्या कुछ नहीं हो ॥25॥

भूमौ निवृत्तिरुदिता पयसि प्रतिष्ठा।
विद्यानले मरुति शान्तिरतीतशान्तिः।
व्योम्नीति याः किल कलाः कलयन्ति विश्वं।
तासां विदूरतरमम्ब! पदं त्वदीयम् ॥26॥

हे जगत्माता! तुम पृथिवी में निवृत्तिकला से जल में प्रतिष्ठा-कला से, अग्नि में विद्या-कला से, पवन में शान्ति-कला से और आकाश में अतीत शान्तिकला से प्रकट हो। तुम्हारी ये कलाएँ जगत् को धारण करती हैं, यह निश्चय है; परन्तु हे अम्बे! तुम्हारे स्वरूप की जो कलाएँ हैं, उनसे तुम्हारा पद (स्वरूप) बहुत ऊँचा है (अर्थात् इन स्वरूपों से भी तुम्हारा स्वरूप उत्कृष्ट है) ॥26॥

यावत्पदं पदसरोजयुगं त्वदीयं।
नाङ्गीकरोति हृदयेषु जगच्छरण्ये।
तावद्विकल्पजटिलाः कुटिलप्रकारा।
तर्कग्रहाः समयिनां प्रलयं न यान्ति ॥27॥

हे जगत्-रक्षाकारिणी! जब तक कि मतवादी तुम्हारे चरण कमल को अपने हृदय में स्थान नहीं देते, तब तक उन के दुर्ज्ञान से उत्पन्न हुए संशय और कुटिल आकार के तर्क-वितर्क रूपी हठ नाश नहीं हो पाते हैं ॥27॥

यद्देवयानपितृयानविहारमेके।
कृत्वा मनः करणमंडलसार्वभौमम्।
याने निवेश्य तव कारणपञ्चकस्य।
पर्वाणि पार्वति नयन्ति निजासनत्वम् ॥28॥

हे पार्वति! जिस योगी पुरुष ने देवयान-पितृयान, (शुक्ल-कृष्ण गति) का विहार (प्राणापान का संयोग करके और मन और इन्द्रियों को भी जीत करके तुम्हारे मार्ग में प्रवेश किया, वह योगी पाँच कारणों (काल, स्वभाव, नियति, योनि, पंचभूत) के शिर पर अपना आसन जमाता है। (अर्थात् वह इन पांच कारणों से भी ऊर्ध्व गति प्राप्त करता है) ॥28॥

स्थूलासु मूर्तिषु महीप्रमुखासु मूर्तेः।
कस्याश्चनापि तव वैभवमम्ब यस्याः।
पत्या गिरामपि न शक्यत एव वक्तुं।
सासि स्तुता किल मयेति तितिक्षितव्यम् ॥29॥

हे अम्ब! पृथिवीतत्त्व से लेकर मायातत्त्व तक जितनी स्थूल मूर्तियाँ हैं, किसी में भी तुम्हारी विभूति के समान विभूति नहीं है। जिस विभूति की महिमा का वर्णन वाणियों के स्वामी वृहस्पति आदि भी न कर सके, उसी की मैंने स्तुति की, इसके लिए मुझे क्षमा कीजिएगा ॥29॥

कालाग्निकोटिरुचिमम्ब! षडध्वशुद्धा-
वाऽप्लावनेषु भवतीममृतौघवृष्टिम्।
श्यामां घटस्तनतटां सकलीकृतौ च।
ध्यायन्त एव जगतां गुरवो भवन्ति ॥30॥

हे माता! मन्त्र, वर्ण, पद, भवन, कलातत्त्व, यह षडध्व संसार है। इसके शोधन (संहार) करने में तुम करोड़ों काल रूपी अग्नि के समान हो तथा तुम्हारे रूप में अन्तर्भाव करने वालों के लिए तुम अमृत की वृष्टि करने वाली हो। संसार की उत्पत्ति के लिए प्रकाश और विमर्श स्वरूप ऐसी श्यामा भगवती का जो ध्यान करते हैं, वे जगत् के गुरु बन जाते हैं ॥30॥

विद्यां परां कतिचिदम्बरमम्ब केचि-
दाऽनन्दमेव कतिचित्कतिचिच्च मायाम्।
त्वां विश्वमाहुरपरे वयमामनाम।
साक्षादपारकरुणां गुरुमूर्तिमेव ॥31॥

हे माता! कई एक साधक तुमको पराविद्या (चिच्छक्ति) रूप से, कई आकाश (सर्वव्यापक) रूप से, कई आनन्द (आनन्दं ब्रह्म इति श्रुति) इस रूप से, कई माया (जगद्विकास) रूप से, और कई जगत् (विराट्) रूप से तुम्हें पुकारते हैं; पर हम तो साक्षात् पूर्ण दयास्वरूपा गुरुमूर्ति मान कर ही तुम्हें प्रणाम करते हैं ॥31 ॥

कुवलयदलनीलं बर्बरस्निग्धकेशं।
पृथुतरकुचभाराक्रान्तकान्तावलग्नम्।
किमिह बहुभिरुक्तैस्त्वत्स्वरूपं परं नः।
सकलभुवनमातः सन्ततं सन्निधत्ताम् ॥32॥

बार-बार स्तुति अथवा विविध प्रकार के कीर्तन से क्या होगा। तुम्हारा नील कमल के समान शोभायमान, घुँघराले कोमल केशों को धारण करने वाला, पृथुलकुचमार से आक्रान्त, मनोहर जो सर्वपर स्वरूप है, उसी का सान्निध्य नित्य मुझ साधक को प्राप्त हो ॥32॥

इति पञ्चस्तव्यां चतुर्थोऽम्बास्तवः समाप्तः।



सकलजननीस्तवः पञ्चमः ॥

अजानन्तो यान्ति क्षयमवशमन्यान्यकलहैः ।
अमी मायाग्रन्थौ तव परिलुठन्तः समयिनः ।
जगन्मातर्जन्म-ज्वर-भय-तमः कौमुदि वयं ।
नमस्ते कुर्वाणाः शरणमुपयामो भगवतीम् ॥1॥

हे जगत्माता! (मतवादी अज्ञानी) मनुष्य आपस में लड़ते हुए बेबस मर जाते हैं। वे तुम्हारी माया से मोहित होकर जगत् के बन्धनों में फँस कर बार-बार संसार में जन्म लेते हैं। जैसे चाँदनी अँधेरे को दूर करती है, उसी प्रकार बार-बार जन्म लेने वाले संसारियों के तापों और भयों रूपी अँधेरे को तुम दूर करने वाली हो। हम ऐसी भगवती को प्रणाम करते हुए उनकी शरण में जाते हैं ॥1॥

वचस्तर्कागम्य-स्वरसपरमानन्दविभव-
प्रबोधाकाराय द्युतितुलितनीलोत्पलरुचे ।
शिवस्याराध्याय स्तनभरविनम्राय सततं
नमो यस्मै कस्मैचन भवतु मुग्धाय महसे ॥2॥

वाणी और मन की अगोचर चैतन्यस्वरूपा, परमानन्दअवस्थारूप, उत्कृष्ट ज्ञानस्वरूपा, नीलकमल के समान दीप्ति वाली, शिव की आराध्य देवी, ज्ञान-क्रिया-रूप स्तनभार को जगत्-आप्यापन के लिए झुकाती हुई, किसी अलौकिक अन्तर्भूत तेजस्वरूपा परा (देवी) को सदा-सर्वदा हमारा नमस्कार हो ॥2॥

लुठद्गुञ्जाहारस्तनभरनमन्मध्यलतिकाम्।
उदञ्चद्घर्माम्भः कणगुणितनीलोत्पलरुचम्।
शिवं पार्थत्राण-प्रवण-मृगयाकारगुणितं।
शिवामन्वग्यान्तीं शबरमऽहमन्वेमि शबरीम् ॥3॥

रत्तियों के लटकते हुए हार वाली, स्तनभार से झुकी हुई (कटि) वाली नीलकमल पर चमकते हुए जलकण के समान नीलवर्णी शरीर से निकली हुई पसीने की चमकती हुई बूँदों वाली, अर्जुन की रक्षा के लिए झुके हुए मृगयार्थ (शिकार के लिए) शबर रूपधारी शिव के पीछे-पीछे जाने वाली शबरी (शिवा) को मैं प्रणाम करता हूँ ॥3॥

मिथः केशाकेशिप्रधन-निधनास्तर्कघटना-
बहुश्रद्धाभक्तिप्रणयविषयाद्यापत्विधयः।
प्रसीद प्रत्यक्षीभव गिरिसुते! देहि शरणं।
निरालम्बं चेतः परिलुठति पारिप्लवमिदम्। ॥4॥

तार्किक लोग वाद-विवाद में आपस में केशाकर्षण करते हुए लड़ मरते हैं। बहुत से पुरुष धनविषयों की प्राप्ति के लिए श्रद्धा और भक्ति से आपकी पूजा करते हैं। हे पर्वत की पुत्री! कृपा कीजिए, दर्शन दीजिए और मुझ निराश्रय (अनाथ) को शरण दीजिए। यह मेरा मन चारों ओर घूमते-घूमते बहुत दीन हो चुका है ॥4॥

शुनां वा ह्वेर्वा खगपरिषदो वा यदशनं।
कदा केन क्वेति क्वचिदपि न कश्चित्कलयति।
अमुष्मिन्विश्वासं विजहिहि ममाह्वाय वपुषि।
प्रपद्येथाश्चेतः सकलजननीमेव शरणम् ॥5॥

यह शरीर कुत्तों का या अग्नि का या पक्षियों का भक्ष्य है। कोई कभी भी समझ नहीं पाता कि यह शरीर कब, किस प्रकार और क्योंकर क्या बनेगा। इसलिए हे मन! तुम इस क्षणभंगुर शरीर पर विश्वास करना छोड़ दो और जगत्माता की शरण में चले जाओ ॥5॥

अनाद्यन्ताभेदप्रणयरसिकापि प्रणयिनी।
शिवस्यासीर्यत्त्वं परिणयविधौ देवि गृहिणी।
सवित्री भूतानामपि यदुदभूः शैलतनया।
तदेतत्संसारप्रणयनमहानाटकसुखम् ॥6॥

अनादि अनन्त तथा अभेद प्रेमस्वरूप होने पर भी शिव की प्रणयवती बनी हुई हो। विवाहविधि में तुम उनकी गृहिणी हो। पर्वत की पुत्री होकर भी जीवों की उत्पति में लगी हो। हे देवि! यह सब तुम्हारा संसार के प्रणयन के लिए किये जाने वाले महानाटक का आनन्द है ॥6॥

ब्रुवन्त्येके तत्त्वं भगवति! सदन्ये विदुरसत्।
परे मातः प्राहुस्तव सदसदन्ये सुकवयः।
परे नैतत्सर्वं समभिदधते देवि! सुधियः।
तदेतत्त्वन्मायाविलसितमशेषं ननु शिवे! ॥7॥

हे भगवति! सांख्य दर्शन वाले तुम को तत्त्व रूप कहते हैं। बौद्ध सत् रूप कहते है। न्याय दर्शन वाले (असत्) जगत रूप कहते हैं। हे माता शाक्तीमार्गी-बुद्धिमान् सत्-असत् रूप कहते हैं। हे देवि! वेदान्ती कहते हैं, कि यह सब कुछ भी नहीं है। हे शिवे! बुद्धिमानों का कहना है कि यह सब तुम्हारी माया का ही विस्तार है ॥7॥

तडित्कोटिज्योतिर्द्युति-दलितषड्ग्रन्थिगहनं।
प्रविष्टं स्वाधारं पुनरपि सुधावृष्टिवपुषा।
किमप्यष्टात्रिंशत्किरणसकलीभूतमनिशं।
भजे धाम श्यामं कुचभरनतं बर्बरकचम् ॥8॥

करोड़ों बिजलियों की दीप्ति के समान तेज से षड्ग्रन्थि-रूप गहन-वन का दलन करके, ध्रुव-पद में प्रवेश करके, पुनः प्रत्यावर्तित होकर अमृतवार्षिणी स्वदेह से अड़तीस कलाओं वाले जगत् की सृष्टि करने वाली ऐसी मेघश्यामवर्णी तेजस्विनी देवी का मैं भजन करता हूँ। जो कि स्तनभार से झुकी हुई है और घुँघराले केशों वाली हैं।

चतुष्पत्रान्तः षड्दलभगपुटान्तस्त्रिवलय।
स्फुरद्विद्युत्वह्नि द्युमणिनियुताभद्युतियुते।
षडश्रं भित्त्वादौ दशदलमथ द्वादशदलं।
कलाश्रं च द्वयश्रं गतवति! नमस्ते गिरिसुते ॥9॥

गुदास्थान के निकट मूलाधार चक्र में चतुर्दल कमल के मध्य त्रिकोण में विराजमान, तीन कुंडलों वाली, ऊपर की ओर मुख किये हुए स्थित सर्पिणी जैसी, सहस्रों बाल-सूर्यों जैसी कोमल-दीप्तिमती तथा करोड़ों बिजलियों जैसी चमकवाली पराशक्ति कुण्डलिनी जो कि क्रमशः षड्दल, दशदल, द्वादशदल, षोडशदल, कमलों का भेदन करती हुई द्विदल पर पहुँचती है, उस गिरिजास्वरूपा को मैं नमस्कार करता हूँ।

कुलं केचित्प्राहुर्वपुरकुलमन्ये तव बुधाः।
परे तत्सम्भेदं समभिदधते कौलमऽपरे।
चतुर्णामप्येषामुपरि किमपि प्राहुरपरे।
महामाये! तत्त्वं तव कथममी निश्चिनुमहे ॥10॥

कुछ ज्ञानी पुरुष तुमको कुल (छत्तीस तत्त्वात्मक) कहते हैं। कुछ बुद्धिमान् अकुल (परम-शिव-रूप) कुछ आचार्य कुल-अकुल (शिव-शक्ति-रूप) पुकारते हैं। कुछ कौल (सब तत्त्वों का संयोग स्वरूप) कहते हैं। कुछ इन चारों रूपों से भी ऊपर असामान्य कहते हैं। हे महामया! तुम्हारा तत्त्व वे सब किसी तरह से निश्चित नहीं कर पाते हैं ॥10॥

षडध्वारण्यानीं प्रलयरविकोटिप्रतिरुचा।
रुचा भस्मीकृत्य स्वपद-कमलप्रह्वशिरसाम्।
वितन्वानः शैवं किमऽपि वपुरिन्दीवररुचिः।
कुचाभ्यामानम्रः शिवपुरुषकारो विजयते ॥11॥

षट् मार्ग (भवन, तत्त्व, कला, वर्ण, पद, मन्त्र) रूप जंगल को प्रलयकाल के करोड़ों सूर्यों के तुल्य प्रकाश से जलाकर भस्म करने वाले शिव की वह शक्ति, जो अपने नतमस्तक भक्तों का कल्याण चाहने वाली असामान्य रूप से नील कमल जैसी दीप्ति वाली है तथा योग और ध्यान रूप स्तनों से झुकी हुई है; उसी शिव की स्वतन्त्र शक्ति की नितरां जय होवे ॥11 ॥

प्रियङ्गुश्यामाङ्गीमरुण-तर-वासः किसलयां।
समुन्मीलन्मुक्ताफल-बहुल-नेपथ्यकुसुमाम्।
स्तनद्वन्द्वस्फारस्तबक-नमितां कल्पलतिकां।
सकृद्ध्यायन्तस्त्वां दधति शिवचिन्तामणिपदम् ॥12॥

श्याम प्रियङ्गुलता (केशर) जैसे निर्मल श्यामस्वरूप वाली, अरुण किशलय के समान वर्ण वाले कोमल वस्त्र धारण करने वाली, विकसित मुक्ताफल-कुसुमों से अलंकृत और ज्ञान-क्रिया रूप दो स्तनों के भार से पुष्प-सत्बक (गुच्छों) के भार से झुकी हुई कल्पलता जैसी; हे माता! ऐसे आपके स्वरूपका जो एक बार भी ध्यान करते हैं, वे शिव-चिन्तामणि बन जाते है यानी शिव के प्रिय बन जाते हैं ॥12॥

प्रकाशानन्दाभ्यामविदितचरीं मध्यपदवीं ।
प्रविश्यैतद्द्वन्द्वं रविशशिसमाख्यं कवलयन् ।
प्रविश्योर्ध्वं नादं लय-दहन-भस्मीकृतकुलः ।
प्रसादात्ते जन्तुः शिवमकुलमम्ब प्रविशति ॥13॥

प्रकाश-आनन्द (इड़ा-पिंगला अथवा ज्ञान-क्रिया) इन द्वन्द्वों (जोड़ों), से अविदित रहकर (इनको छोड़कर) मध्यवर्ती मार्ग (सुषुम्ना-मार्ग) से प्राण को अनाहत नाद में लय करके चिद्विमर्श की वह्नि से कुल (अभिमान) को भस्म करके साधक हे अम्ब! तुम्हारे ही प्रसाद से अकुल (अविनाशी) शिवपद में प्रवेश करता है ॥13॥

षडाधारावर्तैरपरिमितमंत्रोर्मिपटलैः ।
चलन्मुद्राफेनैर्बहुविधलसद्दैवतझषैः ।
क्रमस्रोतोभिस्त्वं वहसि परनादामृतनदी ।
भवानि! प्रत्यग्रा शिवचिदमृताब्धिप्रणयिनी ॥14॥

षट्-शास्त्र रूप भँवरों से, असंख्य मन्त्ररूप लहरों के समूह से, विभिन्न मुद्राओं रूप चञ्चल फेनों से, अनेक प्रकार के भाग्यों अथवा पूर्वकर्मों रूप मत्स्यों से और अनेक अनुष्ठानों रूपी छोटे नालों से युक्त हुई अमृतस्वरूपा प्रवाहित नदी के समान हे भवानी! तुम शिवरूप चित्-महासमुद्र में शीघ्रता से प्रवेश करती हो ॥14॥

महीपाथोवह्निश्वसन वियदात्मेन्दुरविभिः।
वपुर्भिर्ग्रस्तांशैरपि तव कियानम्ब! महिमा।
अमून्यालोक्यन्ते भगवति! न कुत्राप्यणुतराम्।
अवस्थां प्राप्तानि त्वयि तु परमव्योमवपुषिं ॥15॥

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, जीवात्मा, चन्द्रमा, सूर्य जैसे रूपों से जो तुम में सम्पूर्ण ओतप्रोत हैं, तुम्हारी महिमा, (विस्तार) हे मातः! कितनी है, यह अनुभव नहीं होता है। हे भगवति! तुम्हारे परमाकाश में उनकी अवस्था अणुमात्र भी गणना में नहीं आती है। तुम तो अचर, अप्रमेय, अखण्ड हो, परन्तु ये सब चर, गणनीय प्रमेय और अवयवी हैं ॥15॥

मनुष्यास्तिर्यञ्चो मरुत इति लोकत्रयमिदं।
भवाम्भोधौ मग्नं त्रिगुणलहरींकोटिलुठितम्।
कटाक्षश्चेदत्र क्वचन तव मातः! करुणया।
शरीरी सद्योऽयं व्रजति परमानन्दतनुताम् ॥16॥

हे माता! मनुष्य, पशु-पक्षी और देवता ये तीनों लोकवासी संसार-समुद्र में मग्न रहते हैं और सत्-रज-तम इन तीनों गुणों की करोड़ों लहरों में घूमते रहते हैं; किन्तु यदि उन पर आपकी थोड़ी-सी भी दयादृष्टि हो जाती है, तो ये शरीरधारी तुरन्त परमानन्द-स्वरूप हो जाते हैं ॥16॥

कलां प्रज्ञामाद्यां समयमनुभूमिं समरसां।
गुरुं पारम्पर्यं विनयमुपदेशं शिवकथाम्।
प्रमाणं निर्वाणं परममतिभूतिं परगुहां।
विधिं विद्यामाहुः सकलजननीमेव मुनयः ॥17॥

क्रिया-शक्ति, ज्ञान-शक्ति, आदिभूत, सदाचार, अनुभव-स्वरूप, सबमें एकरस, पारम्परिक गुरू, विनय, उपदेश, भगवत्कथा, प्रत्यक्ष-अनुमान-उपमान-प्रमाण, मोक्ष, परमसिद्धान्त, शास्त्रमर्यादा और विद्याशक्ति; मुनिजन हे जगत्माता! तुमको इन नामों से पुकारते हैं ॥17॥

प्रलीने शब्दौघे तदऽनुविरते विन्दुविभवे।
ततस्तत्त्वे चाष्टऽध्वनिभिरनुपाधिन्युपरते।
श्रिते शाक्ते पर्वण्यनुकलित-चिन्मात्रगहनां।
स्वसंवित्तिं योगी रसयति शिवाख्यां परतनुम् ॥18॥

योगी जन प्रत्याहार से शब्दादि गुणों का निरोध करते हुए, ज्ञान को चिदाकाश में लीन करते हुए, आत्मस्वरूप को अष्ट-वर्गात्मक उपाधि-रहित नादरूप परामर्श में उपराम करते हुए, शाक्त मार्ग का आश्रय लेते हुए और *चिन्मात्र रहस्य का विमर्श करते हुए स्वाभाविक शिवस्वरूप का आस्वादन करते हैं ॥18 ॥*

परानन्दाकारां निरवधि शिवैश्वर्यवपुषं।
निराकार-ज्ञान-प्रकृतिमनवच्छिन्न-करुणाम्।
सवित्रीं भूतानां निरतिशयधामास्पदपदां।
भवो वा मोक्षो वा भवतु भवतीमेव भजताम् ॥19॥

परमानन्द-मूर्ति, असीम शिव की ऐश्वर्य मूर्ति, निराकार ज्ञान-मूर्ति, निरन्तर दया-मूर्ति, जीवों को उत्पन्न करने वाली और परम शिव के पद पर आरूढ़ होने वाली, ऐसे तुम्हारे स्वरूप को भजन करने वाले साधकों को संसार और मोक्ष पद एक जैसा है ॥19॥

जगत्काये कृत्वा तमपि हृदये तच्च पुरुषे।
पुमांसं विन्दुस्थं तमपि परनादाख्यगहने।
तदेतज्ज्ञानाख्ये तदपि परमानन्दविभवे।
महाव्योमाकारे त्वदनुभवशीलो विजयते ॥20॥

हे जगत्माता! जगत् को काया में, काया को हृदय में, हृदय को पुरुष वा जीवात्मा में, जीवात्मा को बिंदु वा चित्स्वरूप में, बिन्दु को दुर्गम नाद या विमर्श रूप में, नाद को ज्ञान में और ज्ञान को स्वात्म-प्रकाश में पूर्ण करके हे महाकाश-मूर्ति! तुम्हारे अनुभवशील भक्त जन तुम्हारे ऐसे शून्य रूप में लय तथा तन्मय होते हैं; ऐसे भक्तजनों की जय हो ॥20॥

विधे विद्ये वेद्ये विविधसमये वेदजननि।
विचित्रे विश्वाद्ये विनयसुलभे वेदगुलिके।
शिवाज्ञे शीलस्थे शिवपदवदान्ये शिवनिधे।
शिवं मातर्मह्यं त्वयि वितर भक्तिं निरुपमाम् ॥21॥

हे विधिरूपिणी! हे विद्यारूपिणी! हे जानने योग्य शक्तिरूपिणी! हे विभिन्न-सिद्धान्तरूपिणी! हे वेदमाता! हे विचित्र रूपिणी! हे विश्व की आदि-जननी! हे भक्ति से सहज-प्राप्य! हे वेद-तत्त्वरूपिणी! हे शिवाज्ञारूपिणी! हे शील में स्थित रहने वाली! हे शिव-पद को प्राप्त कराने वाली! हे कल्याणों की भण्डार! हे शिवपत्नी! हे माता! मुझे अपनी अनुपम-अचल-भक्ति दीजिए ॥21॥

विधेर्मुण्डं हृत्वा यदकुरुत पात्रं करतले
हरिं शूलप्रोतं यदगमयदंसाभरणताम्।
अलंचक्रे, कण्ठं यदपि गरलेनाम्ब गिरिशः।
शिवस्यायाः शक्तेस्तदिदमखिलं ते विलसितम् ॥22॥

गिरीशने ब्रह्मा का शिर काटकर उसको अपने हाथ का पात्र बनाया, विष्णु का शिर त्रिशूल में पिरोकर कन्धे का भूषण बनाया, यद्यपि महादेव ने अपने कंठ को विष से अलङ्कृत किया है; किन्तु हे अम्ब! जिस शक्ति से शिव ने विष धारण किया है, वह शक्ति तुम्हीं हो ॥22॥

विरञ्च्याख्या मातः! सृजसि हरिसंज्ञा त्वमवसि।
त्रिलोकीं रुद्रख्या हरसि विदधासीश्वरदशाम्।
भवन्ती सादाख्या शिवयसि च पाशौघदलिनी।
त्वमेवैकानेका भवसि कृतभेदैर्गिरिसुते ॥23॥

हे माता! तुम ब्रह्मा रूप से तीन लोकों की उत्पत्ति, विष्णु रूप से पालन और रुद्र रूप से संहार करती हो। तुम्हीं ईश्वर दशा को धारण करती हो। सदा शिव रूप बनकर पाश-समूहों को काट कर शिव के साथ तादात्म्य पदवी देती हो। हे पार्वति! तुम एक होकर भी भेददृष्टि से अनेक हो जाती हो ॥23॥

मुनीनां चेतोभिः प्रसृतिकाषायैरपि मनाग्।
अशक्ये संस्प्रष्टुं चकितचकितैरम्ब सततम्।
श्रुतीनां मूर्धानः प्रकृतिकठिनाः कोमलतरे
कथं ते विन्दन्ते पदकिसलये पार्वति पदम् ॥24॥

हे अम्ब! जिन मुनियों ने अपने चित्त से रागद्वेषादिकों को निरन्तर निकालकर कोमल बना लिया है, वे भी अत्यन्त चकित होते हुए आपके चरणों को स्पर्श करने में असमर्थ रहे। तब उपनिषदादि ग्रन्थ, जो स्वभाव से ही कठिन-दुर्बोध हैं, हे पार्वति! वे किस प्रकार तुम्हारे कोमलचरण कमलों को पा सकते हैं ॥24॥

तडिद्वल्लीं नित्याममृतसरितं पाररहितां।
मलोत्तीर्णं ज्योत्स्नां प्रकृतिमगुणग्रन्थिमहनाम्।
गिरां दूरां विद्यामविनतकुचां विश्वजननीम्।
अपर्यन्तां लक्ष्मीमभिदधति सन्तो भगवतीम् ॥25॥

विद्युल्लता रूप, शाश्वत अपार अमृत नदी रूप, निर्मल चाँदनी रूप, प्रकृति रूप, कुण्डलिनी रूप, वाणी रूप, अनिर्वचनीय विद्या रूप, कुमारी षोडशी रूप, जगत्माता रूप, अनवच्छिन्न लक्ष्मी रूप; साधक जन भगवती को ऐसे पुकारते हैं ॥25॥

शरीरं क्षित्यम्भः प्रभृतिरचितं केवलमिदं।
सुखं दुःखं चायं कलयति पुमांश्चेतन इति।
स्फुटं जानानोऽपि प्रभवति न देही रहयितुं।
शरीराहंकारं तव समयवाह्यो गिरिसुते ॥26॥

यह शरीर तो पृथिवी, जल आदि महाभूतों से बना हुआ है। इसमें चेतन पुरुष के होने से ही सुख-दुःख का अनुभव होता है। हे गिरिसुते! प्राणी यह स्पष्ट रूप से जानता भी है, परन्तु तुम्हारे अनुग्रह के विना शरीर के अभिमान को नहीं छोड़ सकता ॥26॥

पिता माता भ्राता सुहृदनुचरः सद्म गृहिणी।
वपुः पुत्रो मित्रं धनमपि यदा मां विजहति।
तदा मे भिन्दाना सपदि भयमोहान्धतमसं
महाज्योस्त्ने मातर्भव करुणया सन्निधिकरी ॥27॥

माँ, बाप, भाई, बन्धु, आज्ञाकारी सेवक, घर, स्त्री, शरीर, पुत्र, मित्र तथा धन जब अन्त समय में छोड़ दें तो उस समय हे चित्प्रकाशत्मक माता! यमभय तथा गाढ़-अज्ञान के अंधकार में डूबे हुए मुझ पर तुम दया करके प्रत्यक्ष गोचर होकर, सहारा देने वाली हो जाना ॥27॥

सुता दक्षस्यादौ किल सकलमातस्त्वमुदभूः।
सदोषं तं हित्वा तदनु गिरिराजस्य तनया।
अनाद्यन्ता शम्भोरपृथगपि शक्तिर्भगवती।
विवाहाज्जायासीत्यहह चरितं वेत्ति तव कः ॥28॥

हे सकल जगत् की माता! तुम पहले दक्षप्रजापति की पुत्री हुई। उसको दोषी जानकर छोड़ दिया। फिर हिमाचल की पुत्री बनी। हे भगवती! तुम शम्भु से अपृथक तथा अभिन्न, अनादि पराशक्ति हो के भी उनके साथ विवाह करके उनकी पत्नी बनी। आश्चर्य है! तुम्हारे चरित्रों को कौन जाने? ॥28॥

कणास्त्वद्दीप्तीनां रविशशिकृशानुप्रभृतयः।
परं ब्रह्म क्षुद्रं तव नियतमानन्दकणिका।
शिवादि क्षित्यन्त्तं त्रिवलयतनोः सर्वमुदरे।
तवास्ते भक्तस्य स्फुरसि हृदि चित्रं भगवति ॥29॥

हे भगवति! सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि आदि तुम्हारी दीप्ति के कण हैं। परंब्रह्म निश्चय ही तुम्हारे आनन्दकणों के सामने क्षुद्र है। शिवतत्त्व से पृथिवी तत्त्व तक सब कुछ तुम्हारे उदर में है, फिर भी समस्त प्राणियों में कुण्डलिनी रूप से तुम स्थित हो और भक्तों के हृदय में प्रकट रूप से दिखाई देती हो, आश्चर्य है! ॥29॥

त्वया यो जानीते रचयति भवत्तैव सततं।
त्वयैवेच्छत्यम्ब! त्वमसि निखिला यस्य तनवः।
गतः साम्यं शम्भुर्वहति परमं व्योम भवती।
तथाप्येवं हित्वा विहरति शिवस्येति किमिदम् ॥30॥

हे अम्ब! तुम्हारी शक्ति से ही शम्भु में ज्ञानोदय होता है। तुम्हारी शक्ति से ही उन में सृष्टि-रचना की इच्छा उत्पन्न होती है और वे सृष्टि-रचना करते हैं। तुम ही उनके सम्पूर्ण शरीर हो। तुम्हारे सम्मुख होने से ही शम्भु सक्रिय होते हैं और तुम्हारे विमुख हो जाने से वे शून्य (निष्क्रिय) हो जाते हैं। शम्भू के साथ तुम्हारा यह कैसा विचित्र विहार है ॥30॥

पुरः पश्चादन्तर्बहिरपरिमेयम् परिमितम् ।
परं स्थूलं सूक्ष्मं सकुलमकुलं गुह्यमगुह्म् ।
दवीयो नेदीयः सदसदिति विश्वं भगवतीम् ।
सदा पश्यन्त्याज्ञां वहसि भुवनक्षोभजननीम् ॥31॥

आगे-पीछे, भीतर-बाहर, अपरिमित-परिमित, परम्, स्थूल-सूक्ष्म, सकुल (शक्ति रूप) -अकुल (शिव रूप) गुप्त-प्रकट, समीप-दूर, सत् रूप-असत् रूप, द्वन्द्वमय यह विश्व है, हे भगवति! तुम तीन लोक के सृष्टि-स्थिति-संहार करने वाली हो। तुम इस जगत् पर सदा आज्ञा करने वाली दिखाई देती हो ॥31॥

मयूखाः पूष्णीव ज्वलन इव तद्दीप्तिकणिकाः ।
पयौधौ कल्लोलप्रतिहितमहिम्नीव पृषतः ।
उदेत्योदेत्याम्ब त्वयि सह निजैस्तात्त्विककुलैः ।
भजन्ते तत्त्वौघाः प्रशममनुकल्पं परवशाः ॥32॥

सूर्य की किरणों के समान, अग्नि की चिनगारियों के समान, समुद्र की महा तरंगों की चंचलता से उत्पन्न असंख्य बिन्दुओं के समान, हे अम्बे! तुम में ही तत्त्वात्मक जगतों के समूह पराधीन जैसे होकर प्रति कल्प बार-बार अपने-अपने कार्यों-सहित उत्पन्न हो-होकर लय होते रहते हैं ॥22॥

विधुर्विष्णुर्ब्रह्मा प्रकृतिरणुरात्मा दिनकरः।
स्वभावो जैनेन्द्रः सुगतमुनिराकाशमनिलः।
शिवः शक्तिश्चेति श्रुतिविषयतां तामुपगतां।
विकल्पैरेभिस्त्वामभिदधति सन्तो भगवतीम् ॥33॥

चन्द्रमा, विष्णु, ब्रह्मा, माया, जीव, आत्मा, सूर्य, स्वभाव, जैनदेव, बुद्धदेव, आकाश, वायु, शिव और शक्ति, ये सब अपने-अपने विकल्पों के अनुसार वेद-विषय बने हुए इन नामों वाली भगवती ही है, ऐसा सन्तजन कहते हैं ॥33॥

प्रविश्य स्वं मार्गं सहजदयया दैशिकदृशा।
षडध्वध्वान्तौघ-च्छिदुर-गणनातीतकरुणाम्।
परानन्दाकारां सपदि शिवयन्तीमपि तनुं।
स्वमात्मानं धन्याश्चिरमुपलभन्ते भगवतीम् ॥34॥

भाग्यवान् पुरुष सद्गुरु की सहज दया और अनुग्रहदृष्टि से शाक्त मार्ग में प्रवेश कर के षड् मार्ग (भवन, तत्त्व, कला, वर्ण, पद, मंत्र) वाले संसार के घने अन्धकार को काटने में समर्थ हो जाते हैं; क्योंकि वे अत्यन्त दयाशील परमानन्द मूर्ति और कल्याण मूर्ति भगवती को सदा अपने आप में ही नित्य-उद्यत पाते हैं ॥34॥

शिवस्त्वं शक्तिस्त्वं त्वमसि समया त्वं समयिनी।
त्वमात्मा त्वं दीक्षा त्वमयमणिमादिर्गुणगणः।
अविद्या त्वं विद्या त्वमसि निखिलं त्वं किमपरं।
पृथक्तत्त्वं त्वत्तो भगवति न वीक्षामह इमे ॥35॥

हे भगवति! तुम शिव हो, शक्ति हो, तुम समय-काल रूप हो, तुम समय जानने वाली हो, तुम आत्मा हो, तुम दीक्षा हो, तुम अणिमादि सिद्धि-समूह हो, तुम विद्या और अविद्या हो, तुम समस्त जगत् के पदार्थ हो, तुम से पृथक् कोई भी तत्त्व हमें दृष्टिगोचर नहीं होता ॥35॥

असंख्यैः प्राचीनैर्जननि जननैः कर्मविलयात्।
गते जन्मन्यन्तं गुरुवपुषमासाद्य गिरशिम्।
अवाप्याज्ञां शैवीं क्रमतनुरपि त्वां विदितवान्
नयेयं त्वत्पूजास्तुतिविरचनेनैव दिवसान्। ॥36॥

अगणित पूर्वजन्मों के संचित कर्मों के समाप्त हो जाने के कारण इस जन्म में मैंने गिरीश (शिवजी) को गुरु-रूप में पा लिया। उनकी शैवी आज्ञा को पाकर मुझ जैसा क्षुद्र प्राणी भी हे माता! तुम्हारे स्वरूप को जान गया है। अतः अब मेरा तो शेष जीवन तुम्हारी पूजा और स्तुति-रचना में ही व्यतीत होगा ॥36॥

यत्षट्पत्रं कमलमुदितं तस्य या कर्णिकाख्या।
योनिस्तस्याः प्रथितमुदरे यत्तदोङ्कारपीठम्।
तस्मिन्नन्तः कुचभरनतां कुण्डलीतः प्रवृत्तां।
श्यामाकारां सकलजननीं सन्ततं भावयामि ॥37॥

स्वाधिष्ठान चक्र में षड्दल कमल का जो उदय है, उसकी जो बीज कोष रूप योनि है, उसके मध्य में जो प्रसिद्ध ओंकार पीठ है, उसके भीतर तिरछी आकार वाली सर्पिणी जो प्रकट है। ऐसी श्यामसुन्दर मूर्ति को धारण करने वाली जगत्माता का मैं चिन्तन करता हूँ, जो कि जगत् का पोषण करने के लिए ज्ञान-क्रियारूप दो स्तनों के भार से झुकी हुई है ॥37॥

भुवि पयसि कृशानौ मारुते खे शशाङ्के।
सवितरि यजमानेऽप्यष्टधा शक्तिरेका।
वहति कुचभराभ्यां या विनम्रापि विश्वं।
सकलजननि सा त्वं पाहि मामित्यवश्यम् ॥38॥

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, रवि, यजमान (अहंकार), इन आठ मूर्तियों के रूप में एक ही शक्ति प्रकट हुई है। विश्व का पोषण करने के लिए भरे हुए स्तनों के भार से झुकी हुई है। भरे हुए स्तनों के भार से झुकी हुई वही सम्पूर्ण जीव-जगत् की माता, हे जननि! तुम मेरी रक्षा अवश्य करना ॥38॥

इति श्री पंचस्तव्यां सकलजननीस्तवं पंचमः।
समाप्ता चेयं पञ्चस्तवी ॥



शान्ति पाठ

ॐ शन्नो मित्रः शंवरूणः शन्नो भवर्त्वयमा,
शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुक्रमः,
नमो ब्रह्मणे नमो वायवे
नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि,
त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि
ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि,
तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु अवतु
मामवतु वक्तारम्,
ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः ॥

ओम् अस्तौ मां सदगमयः तमसो मां ज्योर्तिगमयः।
मृर्त्योमाम् अमृतम गमयः।
ॐ शान्तिः ॐ शान्ति ॐ शान्ति ॥

ॐ सहनाववतु। सह नौ भुनक्तु। सहवीर्यं कुरवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।
ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः ॐ शान्ति ॥

ाठ

शन्नो भवत्वर्यमा,
न्नो विष्णुरुक्रमः,
। वायवे
त्यक्षं ब्रह्मासि,
वदिष्यामि
ं वदिष्यामि,
मवतु अवतु
ारम्,
ः ॐ शान्तिः ॥

मसो मां ज्योतिर्गमयः ।
म गमयः ।
त ॐ शान्ति ॥

क्तु । सहवीर्यं कुरवावहै ।
। मा विद्विषावहै ।
तः ॐ शान्ति ॥

गौरीस्तुतिः ॥

ॐ लीलारब्धस्थापितलुप्ताखिललोकां लोकातीतैयोगिभिरन्तर्हृदि भाव्याम ।
बालादित्यश्रेणिसमानद्युतिपुञ्जां । गौरीमअम्बामअम्बुरुहाक्षीमअहमीडे ॥1॥
आशापाशेकलेशविनाशं विदधानां पादाम्भोजध्यानपराणां पुरुषाणाम् ।
ईशीईशांङ्गार्धहरांतां तनुमध्यां । गौरीमअम्बामअम्बुरुहाक्षीमअहमीडे ॥2॥
प्रत्याहारध्यानसमाधिस्थितिभाजां नित्यं चित्ते निर्वृतिकाष्ठां कलयन्तीं ।
सत्यज्ञानानन्दमयीं तां तडिदाभाम । गौरीमअम्बामअम्बुरुहाक्षीमअहमीडे ॥3॥
चन्द्रापीडानन्दितमन्दास्मित वक्त्रां चन्द्रापीडा लंकृत लोलालक भाराम् ।
इन्द्रो पेन्द्राद्यार्चित पादाम्बुज युग्मां । गौरीमअम्बामअम्बुरुहाक्षीमअहमीडे ॥4॥
नानाकारै शक्तिकदम्बै र्भुवनाने व्याप्य स्वैरं क्रीडति यासौ स्वयमेका ।
कलयाणींतां कल्प लतामानति भाजां । गौरीमअम्बामअम्बुरुहाक्षीमअहमीडे ॥5॥
मूलाधारादुधित वन्तीं विधिरन्ध्रं सौरं चान्द्रं धामविहाय ज्वलितांगीं ।
स्थूलां सूक्ष्मां सूक्ष्मतरां तामअभिवन्द्यां । गौरीमअम्बामअम्बुरुहाक्षीमअहमीडे॥6॥
आदिक्षान्तामक्षरमूर्त्या विलसन्तीं भूते भूते भूतकदम्बं प्रसवित्रीम् ।
शब्दब्रह्मानन्दमयीं तामअभिरामां । गौरीमअम्बामअम्बुरुहाक्षीमअहमीडे ॥7॥
यस्याः कुक्षौ लीनमखण्डं जगदण्डं भूयू भूयः प्रादुरभूदक्षतमेव ।
भर्त्रा सार्धं तां स्फटिकाद्रौ विहरन्तीं । गौरीमअम्बामअम्बुरुहाक्षीमअहमीडे ॥8॥
यस्यामेतत्प्रोतमशेषं मणिमाला सूत्रे यद्वत्क्वापि चरंचाप्यचरं च ।
तामध्यात्मज्ञानपदव्या गमनीयां । गौरीमअम्बामअम्बुरुहाक्षीमअहमीडे ॥9॥
नित्या सत्यो निष्कल एको जगदीशः साक्षी यस्याः सर्गविधौ संहरणे च ।
विश्वत्राण्क्रीडनशीलां शिवपत्नीं । गौरीमअम्बामअम्बुरुहाक्षीमअहमीडे ॥10॥
प्रातःकाले भावविशुद्धिं विदधानां भक्तया नित्यं जलपेत गौरी दशकंयः ।
वाचां सिद्धिं समपदमुश्चय शिव भक्तिं तस्यावश्यं पर्वतपुत्री विदधात्री ॥11॥

इति गौरी स्तुतिः समाप्ता

अथ देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्